अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-41, अंक-02, 1-15 सितंबर, 2017

9 सितंबर

भारतेन्दु-जयन्ती

विनम्र नमन्!

गिरिराज किशोर का उपन्यास **'बा'**

"बड़े-बड़े मालिक चले गये, तो भी छोटे-छोटे मालिक अभी हैं ही। अक्सर ऐसा होता है कि सांप मेढक को पकड़ता है, तो भी मेढक मक्खी को पकड़े रहता है। यह एक मोह ही है। मूर्ख और अज्ञानी प्राणी यह जानते नहीं, कि परमेश्वर की इच्छा क्या है, यह समझें। परमेश्वर सबको समान भाव से देखता है, कोई भेदभाव नहीं करता। इसी तरह हम मनुष्यों को भी बरतना चाहिए। अगर हम सब भाई-भाई बनकर रहेंगे, तो सब सुखी होंगे।"

–विनोबा

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 41, अंक : 02, 1-15 सितंबर, 2017

प्रधान संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595
संपादक
अशोक मोती
मो. : 9430517733

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह   भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. अहिंसा और प्रेम से जुड़ें ... 2
2. अहिंसा की ताकत... 3
3. एक बनो, नेक बनो... 5
4. तीन विवेक... 8
5. लोकनाट्य-परम्परा और भारतेन्दु... 10
6. 'बा' उपन्यास... 13
7. सुधार की राह पर आगे बढ़ें... 16
8. सुप्रीम कोर्ट के फैसले से बड़ी ताकत... 18
9. गतिविधियां एवं समाचार... 19
10. कविताएं... 20

प्रधान संपादक की कलम से...

अहिंसा और प्रेम से जुड़ें

हमारी भावनाएं एवं संवेदनाएं यांत्रिक होती जा रही हैं। अस्पताल में आक्सीजन की कमी से बच्चों की मृत्यु हो, बाढ़ में हजारों लोगों की मृत्यु हो, रेल दुर्घटना में मृत्यु हो या पांच वर्ष से आठ वर्ष उम्र की बच्चियों के साथ बलात्कार कर उनकी निमर्म हत्या। यांत्रिक ढंग से इनके कारणों की चर्चा और दोषी कौन यह बताने की प्रवृत्ति ने हमें अपनी लिप्तता से मुक्त कर दिया है। जो कुछ हो रहा है उसमें हम भी कहीं न कहीं अपरोक्ष रूप से ही सही, भागीदार हैं, यह अपराध बोध अब नहीं होता। और इसके साथ ही हम अपनी सामूहिक जिम्मेदारी से या सामाजिक जिम्मेदारी से बच निकलते हैं।

इसका एक बड़ा कारण यह है कि हम अपने रोज के जीवन में भी एक-दूसरे से जुड़े नहीं हैं। सामूहिकता एवं सामुदायिकता का दायरा सिकुड़ता गया है तथा निजता का दायरा बढ़ता गया है। सामूहिकता एवं निजता के बीच संतुलन का निर्माण लोकशक्ति द्वारा ही हो सकती है। किन्तु राजसत्ता एवं पूंजी सत्ता का दायरा इतना बढ़ गया है कि इसने हमारे जीवन के निजता के भी और निजता के बाहर के दायरे को भी आच्छादित कर लिया है। राजसत्ता के संगठन और पूंजी सत्ता के संगठन से बंधा व्यक्ति नियम एवं आदेश पालन करने की संस्कृति में यांत्रिक ढंग से व्यवहार करने लगता है।

व्यक्ति भावनाओं और संवेदनाओं से प्रेरित तभी होगा जब वह अपनी अंतरात्मा से जुड़कर, उसकी आवाज को सुन सके। अंतरात्मा की आवाज पर चलने वालों की लोकशक्ति ही, लोक के सुख-दुख के साथ आंतरिक रूप से जुड़ सकेगी। यांत्रिक भावनाओं ने हमें यांत्रिक ढंग से राहत कार्यों से जुड़ने का सलीका सिखाया है। पीड़ित को अपनाने और अपना बनाने का सलीका इससे नहीं निकलेगा।

जो लोग लोकशक्ति एवं लोकसत्ता के काम से जुड़े हैं, उन्हें यह पद्धति अपनानी होगी। यानी जो पीड़ित हैं उन्हें अपनाने और अपना बनाने की पद्धति। एक बार जाकर राहत देना महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्वपूर्ण यह है कि पीड़ित यह जान सके, वह अनुभव कर सके कि वह एक व्यापक परिवार का हिस्सा है। इसके लिए जरूरी है कि उनके साथ लोकसत्ता की शक्तियों का निरंतर संवाद बना रहे। भावनात्मक रूप से भी वे मजबूत होते जायें तथा एक समय के बाद उनकी भी आंतरिक शक्ति इतनी मजबूत हो जाये कि समय आने पर वे दूसरे पीड़ितों के साथ अपनत्व के संबंध बना सकें, उन्हें अपना सकें।

अंतरात्मा से प्रेरित व्यक्तियों के वर्तुलों का निर्माण एक नये तरह के सामाजिक सबंधों को जन्म देगा। गांव एवं मुहल्ले स्तर पर एक वर्तुल, और फिर इस वर्तुल का विस्तार होता जायेगा—अपनाने और अपना बनाने की पद्धति से। ये अहिंसा व प्रेमपूर्ण संबंधों का सगुण रूप प्रस्तुत करेंगे। इसके साथ ही सभी प्रकार की हिंसा आधारित एवं विभाजनकारी गोलबंदियों को नकार कर उनका व्यवहारिक विकल्प भी खड़ा करता जायेगा।

राजसत्ता एवं पूंजीसत्ता के संचालन में जिस प्रकार की यांत्रिकता हमारे जीवन में प्रवेश करती गयी है, उसे कमजोर करने व कमतर करने के लिए अंतरात्मा प्रेरित समाज को खड़ा करना होगा। आपदाएं, विपदाएं और दुःख जीवन में होंगे, लेकिन अपनाने वाला और अपना बनाने वाला समाज भी होगा। व्यक्ति की निजता और व्यक्ति की सामाजिकता के बीच का संतुलन व सामंजस्य, अंतरात्मा प्रेरित लोक वर्तुल द्वारा निर्धारित होता रहेगा, एक गतिशील दिशा में।

नये समाज का निर्माण करने की जद्दोजहद में जुड़े साथियों को अहिंसा और प्रेम प्रेरित भावनाओं व संवेदनाओं को मूर्त रूप देने के लिए इन पद्धतियों को अपने व्यापक आंदोलन व रचना के कार्यक्रम के साथ जोड़ना होगा।

बिमल कुमार

अहिंसा की ताकत

❑ **महात्मा गांधी**

गांधी जब स्वतंत्रता के लिए प्राण-पण से जूझ रहे थे, तो उनके मन में सिर्फ आजादी प्राप्त करने की बात नहीं थी। वे देश की आजादी प्राप्त करने के साथ-साथ देश को आधुनिकता की उस संकल्पनाओं से दूर, ऐसे मनुष्य का निर्माण भी करना चाहते थे, जो भौतिक विकास के साथ ही आध्यात्मिक उन्नति की ओर अग्रसर हो, जिससे कि इन मनुष्यों से एक नयी सभ्यता की संरचना विकसित हो सके। गांधी एक तरफ भारतीय मानस को पारम्परिक जड़ताओं और औपनिवेशिक जकड़नों से दूर रखना चाहते थे, दूसरी ओर आध्यात्म को आधुनिकता से स्वायत्त रखने का प्रयास कर रहे थे। यानी गांधी के पास दोहरी चुनौती थी। वे किसी भी तरह अपनी राह को संकीर्ण नहीं होने देना चाहते थे। इसलिए स्वतंत्रता को तंग व अपर्याप्त शब्द की जगह उन्होंने इसे 'स्वराज' कहा और स्वराज प्राप्ति के लिए सत्य और अहिंसा की राह पर चलना अपरिहार्य माना। वीरता के लिए पुरुषार्थ तथा त्याग की आवश्यकता पर बल दिया। दरअसल गांधी तो हिंसा और शोषण पर टिकी पूरी 'शैतानी सभ्यता' (जैसी आज दीख रही है) का विकल्प गढ़ने की कोशिश कर रहे थे। आज देश में शक्ति के वर्चस्व की लड़ाई चल रही है, पढ़िये गांधी व उनके विचार हमारे लिए कितने अनिवार्य हैं। **–संपा.**

आज भी हिंसावाद के बहुत-से पुजारी पड़े हुए हैं। हत्यारों की हद से ज्यादा प्रशंसा की जा रही है। अगर हम हर हत्यारे का गुणगान इसलिए करते हैं कि हत्या करने में उसका हेतु राजनीतिक था तो हम इस काम को प्रशंसा करते-करते स्वयं भी वैसे ही काम करने लगेंगे। कार्य की निन्दा और उसमें निहित वीरता और त्याग की भावना की प्रशंसा, हमें कार्य और उसके हेतु में भेद कर सकने में मदद पहुंचायेगा, और हम आखिरकार राजनीतिक हत्या जैसे कृत्यों से घृणा करना सीखेंगे, फिर चाहे उसका हेतु कितना ही ऊंचा क्यों न हो!

अमेरिका से एक सज्जन ने कई प्रश्न पूछे हैं। इनमें से पहला इस प्रकार है :

वह साहसी और निर्भीक मनोवृत्ति किस काम की है, जो उस चीज की रक्षा में सहायक न हो सके, जिससे आपको प्रेम है? हो सकता है, आपको मृत्यु का भय न हो, लेकिन अगर आप अंत तक अहिंसा पर दृढ़ रहेंगे तो फिर आप लुटेरों के किसी दल द्वारा अपनी प्यारी वस्तु लुटने से किस तरह बचा पायेंगे? जिन्हें कोई लुटेरा लूट रहा हो, वे अगर हिंसात्मक तरीकों से उसका प्रतिरोध नहीं करते हैं तो उन्हें लूटना तो उसके लिए उस हद तक आसान ही हो जायेगा। संसार में लूट चल रही है और जब तक ऐसे लोग रहेंगे जिन्हें आसानी से लूटा जा सकता हो, तब तक वह चलती रहेगी। चाहे प्रतिरोध किया जाये या न किया जाये, सबल लोग दुर्बल को लूटेंगे ही। दुर्बल होना पाप है। इस दुर्बलता से, चाहे जैसे भी हो, छुटकारा पाने की कोशिश न करना अपराध है।

पत्र लेखक भाई यह भूल जाते हैं कि प्रति-प्रहार बराबर सफल नहीं होता। यह भी तो हो सकता है कि लुटेरा यदि अधिक सबल हुआ तो रक्षक को अवश कर दे और उस रक्षक द्वारा किये गये शारीरिक प्रतिरोध से उत्पन्न अपना क्रोध, उस बेचारी लुटती हुई नारी पर उतारे? इस प्रकार उस रक्षक द्वारा उसको बचाने के लिए किये गये शारीरिक प्रतिरोध के कारण उस नारी की स्थिति और बुरी हो जाती है। यह सच है कि उस हालत में रक्षक को इस बात का संतोष रहेगा कि अपना कर्तव्य पूरा करने के लिए उसने कुछ भी उठा नहीं रखा। लेकिन यह संतोष तो अहिंसक प्रतिरोधी को भी प्राप्त होगा। कारण, वह भी उस अबला की रक्षा करने के लिए अपनी जान दे देगा। लेकिन उसे एक और भी बात का संतोष प्राप्त होगा। वह यह कि उसने अनुनय-विनय करके उस लुटेरे के हृदय में दया भरने की कोशिश की। पत्र-लेखक के सामने जो समस्या उपस्थित हुई है वह ऐसा मान लेने के कारण कि अहिंसक रक्षक तो उस लूट का मात्र असहाय दर्शक बनकर रह जायेगा। लेकिन, असलियत यह है कि मेरी योजना के अंतर्गत प्रेम को शरीर-बल की अपेक्षा अधिक सक्रिय और प्रभावसम्पन्न शक्ति माना गया है। जिसके हृदय में प्रेम नहीं है, उसका अनाक्रामक रहना कायरता है। वह न मनुष्य है और न पशु!! उसने तो यह साबित कर दिया है कि वह किसी की रक्षा करने के योग्य नहीं है।

अपने प्रतिद्वंद्वी के मुकाबले किसी अहिंसक प्रतिरोधी में कितनी जबर्दस्त शक्ति होती है, यह बात मैंने अनुभव कर ली है। लेकिन स्पष्ट है कि मेरी तरह पत्र-लेखक भाई इसे महसूस नहीं कर सकते। अहिंसात्मक प्रतिरोध में एक की इच्छा-शक्ति दूसरे की इच्छा-शक्ति से टकराती है। यह प्रतिरोध भी तभी संभव है, जब शरीर-बल का सहारा लेना बिलकुल छोड़ दिया जाये। शरीर-बल का सहारा लेने में आमतौर पर यह बात निहित रहती है कि शरीर-बल क्षीण हो जाने पर प्रतिरोधी आत्मसमर्पण कर देगा। क्या पत्र-लेखक को यह मालूम है कि जिस नारी में दृढ़ इच्छा-शक्ति होगी वह अपने साथ बलात्कार करने आये कितने ही शक्तिशाली व्यक्ति का भी प्रतिरोध सफलतापूर्वक कर सकती है?

मैं यह स्वीकार करता हूं कि सबल लोग दुर्बलों को लूटेंगे ही और दुर्बल होना पाप है। लेकिन दुर्बलता पाप है, यह बात मनुष्य की आत्मा के संबंध में कही गयी है, शरीर के संबंध में नहीं। अगर शरीर के

संबंध में ऐसा कहा जाये, तब तो हम दुर्बलता के पाप से कभी मुक्त हो ही नहीं सकते हैं। लेकिन आत्मा की शक्ति अपने खिलाफ हथियारबंद होकर खड़ी सारी दुनिया की ताकत का मुकाबला कर सकती है। यह शक्ति शरीरतः दुर्बल-से-दुर्बल व्यक्ति भी प्राप्त कर सकता है। जूलू लोग शरीर से भीमकाय होते हुए भी इच्छा-शक्ति के मामले में कमजोर हैं। इसलिए वे एक छोटे से गोरे बच्चे के सामने अवश हो जाते हैं। हृष्ट-पुष्ट शरारती लड़कों को अपनी दुर्बल माताओं के सामने अवश होकर आत्म-समर्पण करते किसने नहीं देखा है? यहां पुत्र की पशुता पर प्रेम विजय पाता है। जो नियम माता ओर पुत्र के बीच चलता है, वह सर्वत्र लागू किया जा सकता है। यह भी जरूरी नहीं कि प्रेम देने वाले को प्रेम मिले ही। प्रेम तो अपना पुरस्कार आप ही है। बहुत-सी माताओं ने प्रेम के बल पर गलत राह पर चलने वाले अपने जिद्दी बच्चों को वश में कर लिया है। तो हम सब प्रेम-बल बढ़ाने में प्रतिद्वंद्विता करने का परिणाम शुभ होता है। दुनिया आज तक शरीर-बल अर्जित करके ही शक्तिशाली बनने की कोशिश करती रही है, मगर वह बुरी तरह विफल हुई है। शरीर-बल अर्जित करने में एक-दूसरे से प्रतिद्वंद्विता करने का मतलब समग्र जाति के विनाश का प्रयत्न करना है।

पत्र-लेखक भाई फिर एक चिरंतन समस्या सामने रखते हैं :

दुनिया में कुछ लालची लोग हैं, जो शरारत कर रहे हैं। उनके हाथ में शक्ति है। वे पागल भले ही हों, लेकिन दुनिया का नुकसान तो कर ही रहे हैं। इस हालत में हाथ-पर-हाथ रख बैठे रहने और उन्हें शैतानी करते जाने को छोड़ देने से हमारा काम नहीं चल सकता। हमें अहिंसा के सिद्धांत की बलि चढ़ाकर भी उनके हाथ से शक्ति छीन लेनी चाहिए, ताकि वे आगे और नुकसान न कर पायें।

इतिहास तो हमें यह बताता है कि जिन लोगों ने, बेशक सदुद्देश्यों से प्रेरित होकर, शरीर-बल का प्रयोग करके, इन लालची लोगों को अपदस्थ किया है, बाद में वे खुद ही उसी बुराई के शिकार हो गये हैं, जो विजित लोगों में थी। ''गुलामों का मालिक बनने के बजाय गुलाम बनना बेहतर है''— अगर यह सिद्धांत-वाक्य सिर्फ बच्चों के रटने के लिए ही नहीं है तो ज्यादा अच्छा होगा कि हम, जो मानव-स्वभाव के लिए सर्वथा अशोभनीय इस पाशविक संघर्ष से ऊब गये हैं, गुलामों के मालिकों को तब तक अपने मन की करने दें जब तक कि हम लालची शोषकों तथा ऐसे ही दूसरे लोगों के पशु-बल के मुकाबले आत्म-बल खड़ा करने की संभावनाओं को ढूंढ़ने में लगे हुए हैं।

लेकिन, इस प्रयोग के आरंभ में ही पत्र-लेखक के सामने निम्नलिखित समस्या उपस्थित हो जाती है :

महात्माजी, आप यह तो स्वीकार करते हैं कि भारत की जनता ने आपके धर्म का अनुसरण नहीं किया है। लगता है, आप इसका कारण नहीं समझते हैं। सचाई यह है कि औसत आदमी महात्मा नहीं होता। इतिहास इस तथ्य की अचूक साक्षी भरता है। भारत में और अन्यत्र भी कुछ महात्मा हुए हैं। ये लोग अपवाद हैं और अपवाद तो नियम को ही सिद्ध करते हैं। आपको इन अपवादों को आधार बनाकर कोई काम नहीं करना चाहिए।

हम अपने-आपको किस तरह भ्रम में डालते हैं! हम सोचते हैं कि हम अपने नश्वर शरीर को दुर्भेद्य बना सकते हैं, पर महात्मा की छिपी हुई शक्ति को जाग्रत कर पाना असंभव मानते हैं। अगर मुझमें इनमें से कोई शक्ति हो भी तो मैं यही दिखाने की कोशिश कर रहा हूं कि मैं भी दूसरों की ही तरह एक दुर्बल, मर्त्य प्राणी हूं और मुझमें न पहले कभी कोई असाधारण शक्ति थी ओर न आज है। *मैं अपने-आपको एक साधारण व्यक्ति मानता हूं, जिससे दूसरे मर्त्य-जनों की ही तरह गलतियां हो सकती हैं। लेकिन, मैं यह स्वीकार करता हूं कि मुझमें इतना विनय अवश्य है कि मैं अपनी गलतियां स्वीकार करके अपने कदम वापस ले सकता हूं।*

मैं यह भी स्वीकार करता हूं कि ईश्वर और उसकी नेकी में मेरा अडिग विश्वास है और सत्य और अहिंसा के लिए मुझमें अक्षय उत्साह है। लेकिन क्या ये तमाम चीजें हर मानव-प्राणी के अंदर छिपी हुई नहीं हैं? अगर हमें आगे बढ़ना है तो हमें इतिहास की पुनरावृत्ति नहीं करनी चाहिए, बल्कि नये इतिहास का निर्माण करना चाहिए। अपने-अपने पूर्वजों द्वारा छोड़ी गयी विरासत को और भी समृद्ध करना चाहिए। अगर हम भौतिक जगत् में नये-नये आविष्कार और नयी-नयी खोजें कर सकते हैं तो क्या आध्यात्मिक जगत में अपनी असमर्थता की घोषणा करना ठीक है? क्या उक्त अपवादों की संख्या बढ़ाकर, उन्हें आम बना देना असंभव है? क्या यह जरूरी है कि इंसान बनने से पहले आदमी पशु बने ही और तब, यदि बन सके तो इंसान बने?

आजकल 'स्वाभाविक' शब्द का बड़ा दुरुपयोग हो रहा है।

एक भाई लिखते हैं :

जिस प्रकार मनुष्य के लिए खाना-पीना स्वाभाविक है, उसी प्रकार क्रोध करना भी स्वाभाविक है।

दूसरे भाई लिखते हैं :

जिस प्रकार हम लोगों के लिए सोना और उठना-बैठना स्वाभाविक है, उसी प्रकार विषयभोग करना भी स्वाभाविक है। यदि ऐसा न हो तो ईश्वर ने हमें विषय-वासना दी ही क्यों है? जितने अंशो में अहिंसा धर्म है उतने ही अंशों में हिंसा भी धर्म है। थोड़े में कहें तो यही प्रतीत होता है कि पुण्य-पाप हमारे दुर्बल मन की कल्पना-मात्र है।

यदि मनुष्य को भी पशुओं की श्रेणी में रख दिया जाये तो अनेक बातें, जिन्हें हम अस्वाभाविक मानते हैं, स्वाभाविक सिद्ध हो सकती हैं। परंतु यदि हम यह स्वीकार करें कि इन दोनों में जातिभेद है तो यह नहीं कहा जा सकता कि जो बातें पशुओं के लिए स्वाभाविक हैं, वे सब मनुष्यों के लिए भी स्वाभाविक हैं। मनुष्य ऊर्ध्वगामी प्राणी है। उसे सारासार की विवेकबुद्धि प्राप्त है। वह बुद्धिपूर्वक परमात्मा का भजन करता है और

उसे जानने-पहचानने का प्रयत्न भी करता है। वह उसकी पहचान कर लेना अपना पुरुषार्थ समझता है। पशु के संबंध में ईश्वर को भजने की इच्छा की कल्पना ही नहीं की जा सकती। और मनुष्य तो अपनी इच्छा से शैतान की भी पूजा करता है। इसलिए मनुष्य का स्वभाव तो ईश्वर को जानना ही होना चाहिए और है भी। वह जब शैतान की पूजा करता है तब अपने स्वभाव के प्रतिकूल कार्य करता है। यदि कोई यह मानता हो कि मनुष्य और पशु में कोई जाति-भेद नहीं है तो उसके लिए मेरी यह दलील अवश्य निरर्थक है। वह अवश्य यह कह सकता है कि पाप-पुण्य जैसी कोई चीज नहीं। ईश्वर-संबंधी जिज्ञासा के स्वभाव से युक्त मनुष्य के लिए तो खाना-पीना इत्यादि क्रियाएं भी तभी स्वाभाविक हो सकती हैं जब वह उन्हें एक विशेष दृष्टि से करे। कारण, ऐसा स्वभाव रखने वाला मनुष्य खाने के लिए अथवा जिह्वा-सुख के लिए नहीं खाये-पियेगा, बल्कि ईश्वर की पहचान करने के लिए भी खाये-पियेगा। इसलिए उसके खाने-पीने में भी सदा चुनाव-मर्यादा और त्याग ही दिखायी देंगे।

इसी प्रकार विचार करने से हमें यह भी मालूम होगा कि विषयभोग मनुष्य-स्वभाव के प्रतिकूल है। इस भोग का सर्वथा त्याग करना ही उसके स्वभाव के अनुकूल है। और इस भोग का सर्वथा त्याग किये बिना ईश्वर को जानना भी असंभव है।

जिस प्राणी को ग्रहण और त्याग की स्वतंत्रता है, उसका काम पाप-पुण्य का भेद माने बिना नहीं चल सकता। पाप-पुण्य का दूसरा अर्थ है त्याज्य और ग्राह्य कर्म! दूसरे की चीज उससे छीन लेना त्याज्य है, पाप है। हममें अच्छी-बुरी वृत्तियां हैं। बुरी वृत्तियों का त्याग करना हमारा धर्म। यदि हम वैसा न करें तो हम मनुष्य-जन्म प्राप्त करने पर भी पशु बन जाते हैं और इसलिए तो सभी धर्म पुकार-पुकारकर कहते हैं कि मनुष्य-जन्म दुर्लभ है और हमें मनुष्य-देह अपनी कसौटी करने के लिए दी गयी है। और हिन्दू-धर्म कहता है कि इस कसौटी में अनुत्तीर्ण होने पर हमें फिर पशु-योनि में जाना होगा। ❑

11 सितंबर : विनोबा-जयंती

एक बनो, नेक बनो

❑ **विनोबा**

हम गांव वालों को समझाते हैं कि आप एक ही गांव में अड़ोस-पड़ोस में रहते हैं, तो दो काम कीजिए : एक बन जाइये और नेक बन जाइए। फिर आप पर कोई संकट या दुःख नहीं आयेगा। रेलवे स्टेशन पर टिकटघर के पास पचासों लोग इकट्ठे होते हैं, लेकिन कोई भी एक-दूसरे की परवाह नहीं करता—हरएक को अपनी ही अपनी फिक्र रहती है, क्योंकि वहां पर कोई परिवार नहीं होता, समूह होता है। अगर गांव की भी ऐसी ही हालत हो जाय कि गांव में हर कोई अपना-अपना स्वार्थ देखे, पड़ोसी की चिन्ता न करे, तो कैसे चलेगा? एक गांव में एक साथ रहते हैं, तो एक बनना ही चाहिए। उसके लिए यही करना होगा कि गांव की जमीन एक कर ली जाय।

कुछ लोग कहते हैं कि हम जमीन के मालिक हैं, हमारे पास कागज हैं। लेकिन कागज से क्या कोई मालिक बनता है? अगर हम मालिक होते, तो मरते क्यों? हम चले जाते हैं, और यह जमीन यहीं पड़ी रहती है। हम कहते हैं कि यह घर 'मेरा' है, वैसे ही हम भी मूर्ख बनकर कहते हैं कि जमीन 'मेरी' है, घर 'मेरा' है। वह चूहा भी मर जाता है और हम भी मर जाते हैं। घर न चूहे का है, न मेरा है। उसी तरह यह जमीन भी मेरी नहीं है। यह ठीक है कि हमें जमीन से खाना मिल जाता है, लेकिन खाने का हक सबको है। हम कहते हैं कि यह खेत 'मेरा' है। 'मैंने' फसल बोयी है। इस पर 'मेरा' हक है। लेकिन ईश्वर किसान 'मेरा'-'मेरा' कहता रहता है, उधर पंछी आकर फसल खाते चले जाते हैं। तो क्या फसल पर पंछियों का हक नहीं है?

पंछियों का हक : एक किसान-औरत थी, जिसका लड़का, पति और बाप कोई नहीं था। अकेली थी। उसका एक छोटा-सा खेत था। उसी में काम करती थी। फसल की रखवारी नहीं कर पाती थी। वह मुझे अपना यह दुखड़ा सुना रही थी। सुनाते-सुनाते वह बोल उठी कि 'हां, पक्षियों का भी हक है। भगवान ने उन्हें पैदा किया है, इसलिए उनका भी खाने का हक है।

हिन्दुस्तान की छोटी-छोटी किसान बहनें भी जानती हैं कि हम मालिक नहीं हैं, मालिक भगवान है। जमीन पर अगर हमारा हक है, तो चूहों और पक्षियों का भी है। फिर हमारे अड़ोसी-पड़ासी भाइयों का तो है ही।

संतों की सीख : जमीन का मालिक भगवान है। अब अगर हम उसके मालिक बन बैठते हैं तो यह बात ईश्वर की मर्जी के खिलाफ है और यदि हम उसकी इच्छा के खिलाफ चलते हैं तो कभी भी सुखी नहीं हो सकते। हमें तरह-तरह के दुःखों का अनुभव होगा। आज वैसा ही हो रहा है। अतः गांव की सब जमीन सबकी बन जाय, तो सारे गांव वाले मिल-जुलकर काश्त करेंगे। कोई ऊंच, कोई नीच नहीं रहेगा। जो कुछ पैदा होगा, उसे परमेश्वर का प्रसाद समझकर सब लोग ग्रहण करेंगे।

परमेश्वर सबको नंगा ही पैदा करता है

चाहे कोई अमीर का लड़का हो या गरीब का। मरने पर तो हमें सब कुछ छोड़कर जाना पड़ेगा। अमीर को महल को छोड़ना पड़ेगा और गरीब को झोपड़ी। हमारा यह शरीर चंद दिनों तक ही टिकने वाला है। ऐसी हालत में हमें ईश्वर की सेवा में अपने शरीर का उपयोग करना चाहिए, केवल भोग भोगने में नहीं लगना चाहिए।

भूख लगती है, इसलिए हम खाना खाते हैं। प्यास लगती है, तो पानी पीते हैं। लेकिन यह सब तो जानवरों में भी चलता है। अगर खाना, पीना, सोना, दुःख भोगना और मर जाना—यही क्रम चला, तो मनुष्य और पशु में फर्क क्या रहा? मनुष्य की खूबी यही है कि उसको ऐसा दिल मिला है कि वह दूसरे के दुःख से दुःखी होता है और दूसरे के सुख से सुखी। शेर को भूख लगती है और हिरन उसके हाथ में नहीं आता, तो वह दुःखी होता है। लेकिन हिरन के दुःख से शेर दुःखी नहीं होता।

संतों ने हमें यह सिखाया था और हम मिल-जुलकर रहते थे। लेकिन बीच में हम लोग आलसी बन गये। परिणाम यह हुआ कि पैसे का महत्त्व बढ़ गया और प्रेम का महत्त्व घट गया। जहां पैसा आया, वहां से प्रेम भागा। पैसे के कारण आज समाज में तीन श्रेणियां बन गयी हैं।

समाज की तीन श्रेणियां : जो ऊपर वाले हैं, उनके मन में नीचे वालों के प्रति तिरस्कार होता है। मैं मानता हूं कि उनमें भी कुछ अपवाद जरूर होते हैं। परंतु अक्सर ऊपर वालों के मन में नीचे वालों के प्रति प्रेमभाव नहीं होता, यद्यपि उनका उनसे प्रतिदिन संबंध आता है। वे समझते हैं कि ये नीचे वाले लोग मूर्ख हैं, इनमें काम करने की बुद्धि नहीं है, ये आलसी हैं, काम में चोरी करते हैं और अगर हम इन पर नजर न रखें, तो ये काम नहीं करते। ये बैल-जैसे हैं। इसलिए हम उन्हें ज्यादा पैसा देंगे, तो भी इनके पास उसका ठीक उपयोग करने की अक्ल नहीं है। ये हमें ठगते हैं, इनमें कोई सत्य नहीं दीख पड़ता।

नीचे वालों की ऊपर वालों के विषय में यह राय है कि ऊपर वाले सारे बदमाश और बदनीयत हैं। ये लोग उनके खेतों में और दूकानों में काम करते हैं और मुंह पर उनकी तारीफ भी कर लेते हैं, फिर भी इनके मन में ऊपर वालों से मदद मांगते हैं। मदद न मिली, तो गालियां देते हैं और मदद मिली, तो भी यह कहते हैं कि इसने आज दे तो दिया, लेकिन कल सवाया वसूल करेगा और पता नहीं, क्या-क्या तकलीफ देगा। दोनों का एक-दूसरे के बिना चलता नहीं, फिर भी एक के मन में तिरस्कार और दूसरे के मन में द्वेष होता है।

जो मझले हैं, उनमें होड़ चलती है। उनके पास बहुत ज्यादा पैसा भी नहीं होता और श्रम-शक्ति भी नहीं होती। ऊपर वालों के पास पैसा होता है और नीचे वालों के पास श्रम-शक्ति। इसलिए ये मझले लोग ऊपर वालों के साथ मुकाबला करने के लिए नीचे वालों के साथ मिल जाते हैं और नीचे वालों को लूटने के लिए ऊपर वालों के साथ मिल जाते हैं और नीचे वालों को लूटने के लिए ऊपर वालों के साथ एक हो जाते हैं। बड़े लोगों से जमीन लेने की बात तो वे स्वीकार करेंगे, लेकिन छोटे लोगों को देने की बात हो, तो वे कहते हैं कि इससे जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े हो जायेंगे। मझले लोगों में आपस में स्पर्द्धा चलती है। वे कभी इस पक्ष में, तो कभी उस पक्ष में दाखिल होकर अपना स्थान कायम रखने की कोशिश करते हैं।

ऊपर वालों में मुख्य भावना तिरस्कार की होती है, मझले लोगों में स्पर्द्धा की होती है और नीचे वालों में द्वेष की। इस तरह समाज के आज तीन टुकड़े हो गये हैं। हम चाहते हैं कि ये तीनों एक हो जायं और जैसे तिपाई के तीन पांव होते हैं, वैसे ही हमारा समाज उन तीन पांवों पर खड़ा हो। तीनों एक-दूसरे से सहयोग करेंगे, तो समाज मजबूत बनेगा।

सर्वोदय-समाज : जहां लोग एक बनते हैं, वहां पर बड़े लोगों के मन में तिरस्कार की भावना नहीं रहेगी, छोटे लोगों के मन में द्वेष की भावना नहीं रहेगी और मझले लोगों में स्पर्द्धा की भावना नहीं रहेगी; क्योंकि वहां न कोई बड़ा रहेगा, न कोई छोटा और न कोई मझला—सब समान हो जायेंगे। कुछ फर्क रहेगा भी, तो हाथ की पांच अंगुलियों के जैसा ही। पांचों अंगुलियां परस्पर सहयोग करती हैं। इसलिए वे पांच होने पर भी लाखों काम करती हैं।

हम चाहते हैं कि समाज में पांचों अंगुलियां-जैसी समानता और परस्पर सहयोग हो। समाज में सब लोग पांच पांडवों की तरह मिल-जुलकर रहें। यह होगा तो तिरस्कार, द्वेष और स्पर्द्धारहित समाज बनेगा। हम चाहते हैं कि ऐसा समाज बने, जिसमें प्रेमभाव, आदर और सहयोग हो। इसी को हम 'सर्वोदय-समाज' कहते हैं।

'सर्वोदय-समाज' में सबका उदय होगा, सब समान होंगे। जब गांव-गांव के लोग हमारे इस विचार को समझेंगे, तब वे गांव-गांव में 'सर्वोदय-समाज' की स्थापना करेंगे। फिर गांव वाले कहेंगे कि हमारे गांव की सारी जमीन, सम्पत्ति, ताकत और बुद्धि गांव की है। हमारे गांवों में हर मनुष्य के पास जो चीज है, वह सारे गांव की है। हमारे गांव में हर मनुष्य अपनी चिन्ता नहीं करता, दूसरों की चिन्ता करता है और गांव के लोग उसकी चिन्ता करते हैं।

मालिकी का प्रभाव : जब गांव के लोग एक-दूसरे के सुख-दुःख में हिस्सा लेंगे, तब सब सुखी बनेंगे। मनुष्य के लिए यह कोई बात बात नहीं है, बल्कि यही बात स्वाभाविक है। परंतु लोग भलाई को, मानवता को और संतों की सिखावन को भूल गये, बहकावे में आ गये और जमीन के मालिक बन बैठे। कुछ लोग फैक्टरी के मालिक बन बैठे। इस तरह जिधर देखो, उधर मालिक ही मालिक दिखाई देते हैं।

हम तो आज तक यही कहते आये हैं कि दुनिया में मालिक एक ही है। लेकिन इन दिनों कोई छोटे मालिक हैं, तो कोई बड़े

मालिक। इन मालिकों ने कहर मचा रखा है। उन्होंने दुनिया को तंग कर रखा है और खुद भी तंग हो गये हैं। ये मालिक लोग भी सुखी नहीं हैं। उन्हें सारी दुनिया से नफरत ही हासिल होती हैं। जो उनके खेत में काम करने के लिए जाते हैं, वे भी उन्हें ठगने की कोशिश करते हैं। जब वे बीमार पड़ते हैं, तो डॉक्टर भी बिना पैसे लिये देखने नहीं आता और इन दिनों तो इनके मरने के बाद सरकार भी इन्हें 'मृत्यु-कर' के जरिये लूटती है। अलावा इसके, इनके घरों में बाप-बेटे की आपस में बनती नहीं, भाई-भाई के झगड़े होते हैं।

पुराणों में दो राक्षसों की कहानी आती है। दो भाई थे, जिनके बीच बड़ा प्रेम था। वे देवों को भारी हो गये। देवों ने उन्हें मोहित करने के लिए एक स्त्री भेजी। वह उनके सामने जाकर खड़ी हो गयी। दोनों भाई कहने लगे कि ''यह स्त्री 'मेरी' है, मैं इसका मालिक हूं।'' दोनों आपस में लड़ पड़े। इसकी गदा उसके सिर पर पड़ी और उसकी गदा इसके सिर पर दोनों खतम हो गये। दोनों राक्षसों के खतम होने से राजा इन्द्र सुखी हुए।

इस तरह जहां 'मेरा' चलता है, वहां पर झगड़े के सिवा कोई चीज नहीं पैदा हो सकती। जो लोग मालिक कहलाते हैं, उनके घरों में झगड़े चलते हैं। इसलिए वे सुखी नहीं हो सकते। आज की समाज-रचना में न मालिक हैं, न मजदूर। हम तो मानते हैं कि मजदूर ही मालिक से ज्यादा सुखी होंगे; क्योंकि उन्हें रात को अच्छी नींद तो आती होगी।

गलती सुधारें : जैसे मां सब बच्चों पर समान प्यार करती है, वैसे ही भगवान सब जीवों पर समान प्यार करते हैं। किसी मां के बच्चे आपस में लड़ें, तो मां को कितना दुःख होगा? वह कहेगी कि तुम सब मेरे बच्चे हो, मुझसे पैदा हुए हो, प्यार से मिल-जुलकर रहोगे, तो मुझे आनंद मिलेगा। वैसे ही परमेश्वर हमसे कहता है कि हम तुम पर समान प्यार करते हैं, तो तुम लोग भी आपस में समान प्यार करो।

भगवान ने हमें हवा, पानी, सूरज की रोशनी और आसमान दिया है। जैसे यह सबके लिए दिया है, वैसे ही जमीन भी सबके लिए दी है। अगर कल कुछ लोग पानी के मालिक बन बैठेंगे, तो क्या भगवान खुश होगा और अगर वह खुश न होगा, तो क्या हम आनंद में रहेंगे? लेकिन आज कुछ लोग तो जमीन के मालिक बन बैठे हैं और बहुत से लोगों के पास बिल्कुल जमीन नहीं है। भगवान को यह बात पसंद नहीं आयेगी। इसलिए हमने जो गलत काम किया है, उसे सुधारना चाहिए।

अंग्रेज गये, राज भी गये : आप जानते हैं कि इस देश पर अंग्रेजों का कब्जा था। वे कहते थे कि हम हिन्दुस्तान के मालिक हैं। हिन्दुस्तान की भूमि पर यहीं के लोग काश्त करते थे, फिर भी अंग्रेज मालिक बन बैठे थे। गांधीजी ने हमें सिखाया कि अंग्रेज इस देश के मालिक नहीं हो सकते, सब भूमि इस देश के निवासियों की है। आखिर हम लोगों ने अंग्रेजों से कहा कि कृपा करके यहां का कब्जा छोड़कर चले जाइये। अगर आप प्रेम से यहां रहना चाहते हैं, तो कोई हर्ज नहीं। आज भी यहां पर कुछ अंग्रेज और अमेरिकन रहते ही हैं। लेकिन वे मालिक बनकर नहीं रह सकते। जब हमने यह कहा, तो उन्होंने हम लोगों को जेल में डाला और काफी तकलीफें दीं। आखिर जब वे समझ गये कि अब ये मानेंगे नहीं, तब उन्होंने मालिकी छोड़ दी और चले गये।

बड़े-बड़े मालिक चले गये, तो भी छोटे-छोटे मालिक अभी हैं ही। अक्सर ऐसा होता है कि सांप मेढक को पकड़ता है, तो भी मेढक मक्खी को पकड़े रहता है। यह एक मोह ही है। मूर्ख और अज्ञानी प्राणी यह जानते नहीं, कि परमेश्वर की इच्छा क्या है, यह समझें। परमेश्वर सबको समान भाव से देखता है, कोई भेदभाव नहीं करता। इसी तरह हम मनुष्यों को भी बरतना चाहिए। अगर हम सब भाई-भाई बनकर रहेंगे, तो सब सुखी होंगे।

पैसे का मोह : हिन्दुस्तान की जमीन में इतनी ताकत है कि वह हमें भूखा नहीं रख सकती। यहां का गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र, कृष्णा, गोदावरी जैसी अच्छी-अच्छी नदियां हैं, अच्छे-अच्छे पहाड़ हैं, वनस्पतियां हैं, जड़ी-बूटियां हैं, अनाज हैं, फल, तरकारियां, मेवा—सब कुछ है। क्या नहीं है? परमेश्वर ने कितनी उत्तम-उत्तम देनें हमें दी हैं। उसने हमें दो हाथ दिये हैं, बुद्धि दी है, हृदय दिया है। उसने हम पर कितना प्रेम बरसाया है, हमारा कितना उपकार किया है! हमें कमी किस चीज की है? लेकिन बीच में हम लोग भूल गये और पैसे के बहकावे में आकर भगवान का नाम लेने के बदले पैसे का ही नाम लेने लगे।

इन दिनों तो यह होता है कि कोई पड़ोसी की भी सेवा करता है, तो पैसे मांगता है। बीमार आदमी डॉक्टर से औषधि मांगता है, तो डॉक्टर भी उससे पैसा मांगता है। पहले ऐसा नहीं था? गांव का बढ़ई हर किसी के घर जो काम निकलता था, वह कर देता था, पैसा नहीं मांगता था। साल के अंत में जब फसल होती थी, तब हर किसान फसल का एक हिस्सा बढ़ई के घर पहुंचा देता था। इसी तरह गांव के लुहार, चमार, वैद्य, शिक्षक आदि गांव की सेवा करते थे और उन्हें फसल का एक हिस्सा मिल जाता था। किसान के सुख-दुःख में सबका सुख-दुःख रहता था। लेकिन इन दिनों हर कोई हिसाब करके पैसा मांगता है। डॉक्टर तो मरने वाले से भी पैसा मांगते हैं। लेकिन पहले जिस तरह चलता था, उससे गांव सुखी था। गांव में जमीन का कोई मालिक न रहे, जमीन सबकी हो जाय, सब मिल-जुलकर काम करें, एक-दूसरे की सो करें, तो सभी सुखी होंगे। किसी खेत में कोई काम निकलेगा, कहीं कुआं बनाना होगा, तो सब लोग मदद में दौड़ पड़ेंगे। किसी के खेत में कम फसल होगी, तो सब लोग उसे अपनी फसल का थोड़ा-थोड़ा हिस्सा दे देंगे। जब हम इस तरह गांव का परिवार बनाकर रहेंगे, भगवान खुश होगा।

... *क्रमशः अगले अंक में*

9 सितंबर : कि.मशरूवाला-जयंती

तीन विवेक

❑ **किशोरलाल घ. मशरूवाला**

एक प्रश्न : 'सर्वोदय' के पिछले अंक का मेरा लेख पढ़कर एक माई ने पूछा है कि जब सर्वमान्य धर्मग्रंथों के भी अर्थ में बड़े-बड़े विद्वानों में तीव्र मतभेद रहता है, तब साधारण आदमी जो केवल अनुवाद द्वारा ही मूलग्रंथ पढ़ सकता है, किस तरह जांचे और निर्णय करे कि कौन ठीक कहता है, और कौन ठीक नहीं कहता? और फिर किस तरह धर्मग्रंथों से लाभ उठावें?

कभी भी निर्णय करने में भूल न हो ऐसा बिलकुल सरल नियम बता देना मुश्किल है, फिर भी कुछ तो स्वयं अपनी समझदारी रखने और कुछ मोटी बातें ध्यान में रखने से, धर्मग्रंथों और महापुरुषों के वचनों का वाचन-मनन हमारी बुद्धि स्पष्ट करने और संस्कार सुधारने में बहुत लाभदायी हो सकता है।

सत्पुरुषों ने कहा है कि कठिन प्रश्नों में हमें तीन अनुभवों को मिलाकर देखना चाहिए। जिस तरह दो बड़ी संख्याओं का (मान लीजिए 64879 और 39658 का) गुणा करना हो और उसकी किसी लघुपद्धति को हम न जानते हो, तो पहले हम 64879×39658 का गुणा करके देखेंगे, फिर 39658×64879 का गुणा करके देखेंगे, फिर जवाबों को मिलायेंगे। शायद जवाब को एक गुणक से भाग देकर जाचेंगे। फिर भी गलती न रह जाय इसकी खातरी कर लेने के लिए किसी दूसरे से वह हिसाब करा लेंगे, और आखिर में यदि किसी पुस्तक में ऐसे हिसाब तैयार दिये गये हों तो उनके साथ मिला लेंगे, और फिर खुद को बिलकुल निश्चित समझेंगे। दूसरे से जब हम हिसाब करायेंगे, तब किसी नौसिखिये को हम प्रमाण न मानेंगे, बल्कि हमसे भी ज्यादा बे-भूल गणिती का आसरा लेंगे। और पुस्तक देखेंगे तो ऐसी, जिसकी छपाई में दोष न हो। क्योंकि हम जानते हैं कि यह आंकड़ों का काम है। थोड़ी भूल से बहुत फर्क हो जा सकता है।

निज-विवेक : इसी तरह जीवन के और धर्म-अधर्म के बारीक प्रश्नों में तीन प्रकार से विवेक करना होता है। पहले तो खुद अपनी बुद्धि और भावना को जितनी ही शुद्ध और निर्मल भूमिका पर ला सकें उतने पर लाकर विचार करें। विचार करने में हम अनुभव की ओर देखें, न कि कल्पना और तरंगों, या तर्क और अनुमानों की ओर। और विवेक करने में यथासंभव क्या हमें रुचिकर होगा और क्या अरुचिकर इस ओर न देखकर, क्या हमारे और दूसरों के लिए हितकर होगा और क्या अहितकर, और क्या सत्य है और क्या असत्य, इसका खयाल करें। इस पर से जिस नतीजे पर हम आ पहुंचें वह होगा निज-विवेक।

तज्ञ-विवेक : लेकिन संभव है कि हमारी बुद्धि, भावनाएं, संसार और जीवन का हमारा अज्ञान, या अधूरा ज्ञान हमें धोखा दें, और हम सच को झूठ समझ लें और झूठ को सच। इसलिए जिस तरह उस बड़े गुणाकार का हिसाब दूसरे अच्छे गणिती से करवा लिया, इसी तरह हमें अपने जमाने के दूसरे तज्ञों का अनुभवयुक्त अभिप्राय देखना चाहिए। हमारे नतीजे और उनका अभिप्राय जब एक-सा हो तो वह बात ज्यादा पक्की होती है। यह हुआ तज्ञ-विवेक।

शास्त्र-विवेक : परंतु यह तज्ञ-विवेक करना भी आसान नहीं है। बल्कि ज्यादा उलझाने वाला भी हो सकता है। क्योंकि किसे तज्ञ कहें, यह ठहराना मुश्किल बात हो जाती है। उस विषय का ही नहीं, सर्वसाधारण तौर पर भी जो अच्छा पंडित है, बड़ा सूक्ष्म तार्किक है, जिसने बहुत पुरुषार्थ भी किया है, बड़े काम शुरू किये हैं, संगठित किये हैं, सफलतापूर्वक चलाये हैं, वृद्ध है, दुनिया का अनुभवी है, देश-विदेश देखे हैं, अच्छा चरित्रवान आदमी भी है, यानी त्यागी है, ब्रह्मचारी है, बहुत तकलीफें बरदाश्त कर सकता है, सेवाभावी है, अपने शिष्यों और मित्रों पर बहुत वात्सल्य और प्रेम रखता है, बहुत जप-तप-योग किया है, और दूसरे भी अनेक सद्‌गुण हैं, जीव-ईश्वर, माया-ब्रह्म, सगुण-निर्गुण, आसक्ति-अनासक्ति, लेप-निर्लेप-साक्षित्व, ज्ञान-भक्ति-कर्म आदि वेदांत में निपुण है, बहुत लोगों का माना हुआ है, बहुत शिष्यों का साक्षात् परब्रह्म है, ऐसे पुरुष को तज्ञ समझना स्वाभाविक होगा। ऐसे पुरुषों का इस बात में क्या अभिप्राय है यह देखना तज्ञ-विवेक में बिलकुल जायज माना जायेगा। परंतु उलझन तब पैदा हो जाती है जब ऐसे दो तज्ञों की राय एक दूसरे से उलटी पड़ जाती है। तब शास्त्रों से तीसरा सबूत पाने का मार्ग बताया गया है। यानी, पुराने महापुरुषों और अनुभवियों का क्या कहना है। वे क्या सिखाते हैं? परंतु वह भी एक तरह का तज्ञ-प्रमाण ही है। एक अर्वाचीन है, दूसरा प्राचीन है। शास्त्र भी तरह-तरह के होते हैं, और उसके अर्थ करने वाले भी तरह-तरह के। और बाज दफा उन्हें देखकर भी उलझन जैसी की वैसी खड़ी रहती है। तब क्या करें? वह कौन-सी चीज है, जिससे हम दो बड़े तज्ञों को नापें। इस तरह तज्ञ-विवेक और शास्त्र-विवेक करने में भी निज-विवेक करना पड़ता है।

निज-विवेक ही कसौटी : यहां पर हमें प्राणी और मानव और ईश्वर तीनों में रहे प्रत्यक्ष फर्क को समझने की जरूरत हो जाती है। मनुष्य प्राणी तो है, परंतु प्राणी ही नहीं, उससे आगे बढ़ा हुआ है। वह प्राणी स्वभाव को बिलकुल छोड़ नहीं सकता, परंतु उसी में वह सीमित नहीं रह सकता। प्राणीभाव से मानवभाव की तरफ बढ़ते रहना, यह विकास

है। मानवभाव से प्राणीभाव के प्रति मुड़ना ह्रास है। दूसरी तरफ से मानव ईश्वरत्व के प्रति प्रयाण करने की सदा चेष्टा करता रहे, परंतु कभी ईश्वर की पूर्णता या निर्गुणता, साक्षित्व, व्यापकता आदि की कल्पनाएं करता रहे, परंतु जब तक जिन्दा है तब तक कहीं न कहीं उसे मानवभाव और प्राणीभाव में चिपटना पड़ता ही है। तब मानव के धर्माधर्म ठहराने में न प्राणी-स्वभाव का और ईश्वर के तर्कसिद्ध नर्गुण भाव अथवा पशुमानव-समभाव अथवा जड़-चेतन समभाव का अनुकरण किया जा सकता है। मानव का धर्म अपनी मानवता की वृद्धि और उसकी पूर्णता करते जाने का है। उसके प्राणीभाव का समर्थन या उसे निर्गुण करने की चेष्टा करने का नहीं। इसे चाहे मायावेष्टित बुद्धि कहिये, मिथ्यावादी दृष्टि कहिये, अज्ञान-दृष्टि कहिये, किसी नीचे की भूमिका की दृष्टि कहिये, मानव का उत्कर्ष इस धर्म को खोजने और पालने में ही है। यह हमारी निजविवेक की एक बैठक पक्की समझी जाय। इसमें कल्पनागम्य ऊंची भूमिकाएं बताने वालों की बातें हमारे लिए नहीं हैं, ऐसा समझ कर दूर से छोड़ देना चाहिए।

धर्मशास्त्र का उद्देश्य : मनुष्य का मनुष्यत्व अज्ञान से ज्ञान, स्वार्थ से परार्थ, अल्पार्थ से परमार्थ, भोग से संयम, राग-द्वेष से वैराग्य (वीतराग-द्वेष), हिंसा, क्रोध, वैर, कठोरता आदि से अहिंसा, क्षमा, मैत्री, मृदुता आदि, संचय के सुख से दान के सुख, असत्य या अल्पसत्य से गहरे सत्य, स्थूल आनंद से सूक्ष्म समाधान, इन्द्रियों की तृप्ति से हृदय की शांति की ओर प्रगति करते रहने में है। तर्क और विचार गढ़कर बनाया हुआ कृत्रिम संस्कार नहीं। परंतु उसके विकास के क्रम में बना हुआ उसका स्वभाव ही है। परंतु साथ ही इनके लिए कितना प्रयत्नशील रहे, फिर भी क्योंकि वह प्राणी तो रहेगा ही, इसलिए वह डर रखने की जरूरत नहीं कि ज्ञान, परार्थवृत्ति, परमार्थबुद्धि, संयम, वैराग्य, अहिंसा-क्षमा-मैत्री-मृदुता आदि कोमल भावनाएं, दान-सुख, सत्य, समाधान, शांति की खोज आदि में इतना ज्यादा बह जायेगा कि उसके प्राणीभाव मिट जायेंगे, और वह संसार में रहने के अयोग्य हो जायेगा।

पक्षी या विमान आकाश में कितना ही ऊंचा चला जाय, फिर भी वह पृथ्वी पर आना भूल जायेगा या पृथ्वी से दूर हो जायेगा यह डर जैसा फिजूल है, वैसे ही मनुष्य का मनुष्यत्व बहुत बढ़ जाने से उसका प्राणीभाव मिट जायेगा यह डर गलत है। पक्षी या विमान को जिन्दा या मरकर भी जमीन पर आना ही पड़ता है। इसी तरह मनुष्य का प्राणीभाव मिट जाने वाला नहीं है। मनुष्य में रहे पशुभाव और प्राणिभाव को उत्तेजित करने वाले निमित्त जगत में हमेशा विद्यमान हैं और रहेंगे।

दोष के दो कारण : कभी ऐसा जमाना कुछ समय के लिए आ सकता है कि मनुष्य के मनुष्यत्व का सब बाजुओं से विचार न किया गया हो और किसी एक ही बाजू पर जोर दे दिया गया हो और इससे कुछ दोष पैदा हुए हों। नामदेव की रोटी जब कुत्ता उठा ले गया, तब वे उसके पीछे घी की कटोरी ले के दौड़े और कुत्ते को पुकार कर कहने लगे कि बगैर घी चुपड़े रोटी न खाओ। एक दूसरे भक्त स्वयं एकादशी रखते और अपने साथ बैल को भी उपासा रखवाते। यह कभी तो एकाध व्यक्ति की गैरमामुलियत हो सकती है, और कभी केवल विकास की एक भूमिका ही होती है। अगर पिछली बात हो तो थोड़े दिन के बाद अपने आप अपनी योग्य मात्रा पर आ जाती है। थोड़ा-सा ध्यान देने से सुधर सकती है। और जगत में व्यवहार-कुशल माने हुए उन लोगों की कभी कमी नहीं, जो सोचते हैं कि एक धर्मग्रंथ की इस उद्देश्य की रचना हो सकती है कि मनुष्य बहुत ज्यादा मनुष्य न हो जाय, योग्य मात्रा में पशुत्व भी रखे, अक्ल-होशियारी से और धर्मबुद्धि से हिंसा, युद्ध, माता-पिता-गुरु का वध करने की हिम्मत करे, या वाम-मार्गों का अवलंबन आदि करे।

गलत विचार : ये सब चीजें तो हमारे हृदय में पड़ी ही हैं। 'घन वरसे वन पांगरे' बरसात आते ही अनेक प्रकार के घास और कीड़ों से जंगल आप ही भर जाता है। उसके लिए नागर जोतना और बीज बोना नहीं पड़ता। नांगर जोतना पड़ता है, उनकी जड़ें उखाड़ने के लिए। बीज बोने पड़ते हैं धान्यों के, और निंदाई करनी पड़ती है निकम्मी वनस्पतियों की। इसी तरह हमारे मन में रहे हुए प्राणिभावों के मिट जाने के डर से धर्मशास्त्र की रचना नहीं हो सकती। जब किसी पुस्तक से इस तरह के मानी निकाले जायं, तो मानना चाहिए कि या तो वह धर्मशास्त्र नहीं, अथवा तो उसके समझने में गलती हो रही है।

औरंगजेब : औरंगजेब बड़ा चुस्त कुरान-भक्त माना जाता था। कहते हैं अपने खानगी जीवन में बड़ी सादगी से रहता था, इस्लाम के लोगों के माने हुए बाह्यचिह्न दाढ़ी और रोजा दोनों बराबर रखता था। नमाज भी बराबर पढ़ता होगा, और कुरान भी। लेकिन अपने वालिद को कैद करके और अपने भाइयों से दगाबाजी करके उनकी हत्या करके तख्त को छिन लेने और तरह-तरह की कुटिल नीति बरतने में उसे हिचकिचाहट नहीं हुई। अगर यह कहें कि यह सब कुटिलता वह कुरान से सीखा तो कहना होगा कि कुरान धर्मग्रंथ नहीं। परंतु जैसे कि दूसरे नेक मुसलमान बताते हैं कि कुरान में ऐसी बातों के लिए आधार नहीं है और न मुहम्मद पैगम्बर के जीवन में ही, तो समझना चाहिए कि कुरान के नियम से पढ़ने और नमाज रोजा और दाढ़ी रखने के बावजूद औरंगजेब के अपने प्राणीभाव इतने जबरदस्त रहे कि वह कुरान की कैद में नहीं रह सकता था, और

चूंकि कुरान से डरता था, अपनी बुराइयों के लिए भी उसका आधार लेने की कोशिश करता था।

देवदत्त : यही बात औरों की भी है। जब मगध के राजा बिम्बिसार के पुत्र अजातशत्रु को राज्य-लोभ हुआ, तो देवदत्त ने गुरु बनकर उसे सिखाया कि "देखो, भाई, दुनिया दो दिन की है, आयुष्य का कोई भरोसा नहीं। क्या मालूम तुम पहले मरोगे या बाप। इससे धर्म का वचन है कि 'जो कुछ करे, सो आज कर ले।'' राज प्राप्त करना है तो आज ही प्राप्त करो।'' इसमें पहले सब वाक्य धर्मोपदेश के ढंग से हैं। लेकिन नतीजा वाला आखिर का वाक्य? क्या यह कहेंगे कि यह उपदेश एक धर्म वाणी थी? फिर देवदत्त को लगा कि बुद्ध के द्वारा धर्म का प्रचार ठीक नहीं हो रहा है। वे बूढ़े हो गये हैं, संघ को ठीक चला नहीं सकते हैं। उनके आसपास निकम्मे आदमी जमा हो गये हैं। वे निवृत्त भी नहीं हो जाते। इसलिए धर्म की वृद्धि के लिए गुरु को खतम कर देना चाहिए। और उस तरह के उसने प्रयत्न किये। देवदत्त की यह कामना बुद्ध के समय में सफल नहीं हुई सो दूसरी बात है। परंतु क्या इसे धर्माचार कहेंगे? याद रखा जाय कि देवदत्त को भी एक त्यागी पुरुष बताया गया है।

मूल बैठक : तब तज्ञ-विवेक और शास्त्र-विवेक करने में भी हमें निजविवेक की मूल बैठक को हमेशा खयाल में रखना चाहिए। अगर किसी ग्रंथ से हम यह अर्थ नहीं निकाल सकते कि जिससे मानवता के गुणों को ही प्रोत्साहन हो, अगर यह हमारे रागद्वेष और पशुभावों का ही समर्थन करने वाला अर्थ देता है, तो उसे हम धर्मग्रंथ के नाते छोड़ दें, चाहे कितना ही बहुमान्य क्यों न हो। परंतु अगर उससे हम अच्छा अर्थ भी निकाल सकते हैं, तो उसी को सच मानें, और दूसरे अर्थ निकालने वालों को गलत समझें, चाहे कितने ही बहुमान्य क्यों न हों। ❑

साहित्य : 9 सितंबर : भारतेन्दु-जयंती

लोकनाट्य-परम्परा और भारतेन्दु

❑ **प्रमोद कुमार सिंह**

यदि भारतेन्दु को उनके समय ने बनाया था तो उन्होंने भी अपने काल का निर्माण किया था। वे एक साथ नवजागरण की निर्मिति और हिन्दी क्षेत्र की चेतना के संघटक थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उन्हें ठीक ही प्राचीन और नवीन के रचनाशील संयोजक के रूप में विश्लिष्ट किया। प्राक्तन को अद्यतन बनाने वाली उनकी मनीषा अनुपम थी। एक नाटककार के रूप में वे परम्परा की पुनर्नवा-प्रक्रिया के अन्यतम मांत्रिक थे। उनके लिए शास्त्र अलम नहीं था। वे लोक-परंपरा की विस्मृत एवं विकृत विरासत को पुनरुज्जीवित और परिष्कृत करने में कृतकार्य हुए थे। उनका नाट्य-साहित्य इस तथ्य का भलीभांति सत्यापन करता है।

'नाटक' स्वभावतः लोकाश्रित विधा हैं। जनजागृति के लिए संकल्पित भारतेन्दु ने इसकी शक्तियों का सम्यक उपयोग किया था। केवल पौरस्त्य और पाश्चात्य आदर्शों का मेल ही अभीष्ट नहीं था, बल्कि शास्त्रीय नाटकों के प्रतिपक्ष में लोकनाट्य-परंपरा के जीवंत उपादानों के विनियोग में भी उनकी सर्जनात्मक रुचि थी। 'इन्दरसभा' (1853) और पारसी मंच की संस्कृति शून्यता एवं व्यावसायिकता से जूझते हुए उन्होंने देश की लोक सांस्कृतिक जड़ों से जुड़कर अपने नाट्य-साहित्य को प्रासंगिक बनाया था।

भारतेन्दु अपने समय के लोकप्रचलित कौतुकों की ओर ध्यान दे रहे थे। उनके आगे नकलों, कठपुतलियों और विविध मनोरंजक खेलों की देशी दुनिया फैली हुई थी। लौकिक परम्पराओं के उस संसार में उनकी गहरी दिलचस्पी थी, किन्तु वह अभिरुचि अंधी नहीं, 'तत्त्वाभिनिवेशी' थी। भारतेन्दु भांड़ों की क्रिड़ाओं और लीलाओं, यात्राओं आदि के अभिनयों की भ्रष्टता का अनुभव कर रहे थे। लोकजीवन के ये खेल-तमाशे अपनी उपादेयता खो चुके थे। भारत के 'स्वत्व' के संधान-क्रम में भारतेन्दु इस लोक-परंपरा के पर्यालोचन और संवर्द्धन को आवश्यक समझते थे।

हिन्दी के जातीय मंच के पुनरुद्धार के उद्देश्य से परिचालित भारतेन्दु देशकालगत दबावों के बीच मुक्तिमार्ग खोज रहे थे। उनके समय में नाटक का मान घटा हुआ था। लोग उसका अनादर और विरोध करते थे। भारतेन्दु जनहित में इस विधा की पुनर्प्रतिष्ठा के आकांक्षी थे। उक्त क्रम में वे देशकाल की अपेक्षाओं को दृष्टिपथ में रखकर नयी रुचि के अनुकूल नाट्य-प्रणयन के पक्ष में थे। यही दृष्टिकोण उन्हें लोकनाट्यों के नवीनीकरण की ओर ले गया था।

हिन्दी क्षेत्र में 'रासलीला' संज्ञक लोकनाट्य की जनजीवन में गहरी पैठ रही है। 'तटीय नामांति अनन्यवीर वैष्णव' भारतेन्दु 'युगलमूर्ति' के उपासक थे, अतः रासलीलाओं के लोकमंच की ओर उनका आकर्षण स्वाभाविक था। वे 'रासलीला' से आत्मीय स्तर पर संपृक्त थे। 'श्री चन्द्रावली' की संरचना उनकी इस संपृक्ति को भलीभांति व्यंजित करती है। शास्त्रीय दृष्टि से यह 'नाटिका' है, किन्तु इसमें लीला-नाटकों की विशेषताएं देखी जा सकती हैं। सूत्रधार तो इसे स्पष्टतः 'लीला' ज्ञापित करता है। गीत-संगीत और पद्यात्मक संवादों में पगी यह कृति तत्कालीन विभिन्न मंडलियों की अशक्ति को साहित्यिक शक्ति देने में भारतेन्दु सफल हुए हैं। निश्चय ही परंपरागत रासलीला इस रचना में उत्कर्ष लाभ करती है।

कृष्ण की तरह राम की भारती लोकमानस में पुराकाल से प्रतिष्ठित हैं। 'हिन्दी-जाति' स्वभावतः उनकी लीलाओं में रमती रही है। यदि भारतेन्दु ने 'श्री रामलीला' में इस नाट्य-शैली को ग्रहण किया है तो यह केवल उनकी वैष्णवी मानसिकता का उदाहरण नहीं, बल्कि एक ठहरी हुई लोकनाट्य-परंपरा

को प्रभावी बनाने के लिए उसके युगानुकूल परिष्कार का प्रयत्न भी है।

बनारस अपनी रामलीलाओं के लिए प्रसिद्ध रहा है। मेघा भगत और तुलसीदास का यह क्षेत्र आज भी रामनगर के आयोजनों के कारण अपनी उत्सवधर्मिता का साक्षात्कार कराता है। खुले मैदानों से काशी के प्रासादों और पुण्यतोया के प्रवाह तक इस नाट्य-विधा का प्रसार यहां के लोकजीवन का वैशिष्ट्य है। इसके प्रति भारतेन्दु का रुझान आरोपित या प्रायत्निक नहीं था। उन्होंने काशीनरेश के संरक्षण में रचित शीतला प्रसाद त्रिपाठी के 'जानकीमंगल' (1868) में स्वेच्छया लक्ष्मण का अभिनय किया था। वे अस्वस्थ अभिनेता की अनुपस्थिति के कारण जनता को निराशा से बचाने के लिए उस भूमिका में उतरे थे। उनकी उक्त पहल ध्यान देने योग्य है। वे रामाश्रयी नाटकों के अभिनय द्वारा एक स्वस्थ वातावरण बनाना चाहते थे। परंपरागत रामलीला में स्फूर्ति भरने वाले लेखन एवं उसके मंचन में उनकी सच्ची रुचि के कई साक्ष्य मिलते हैं। उन्होंने कई समकालीन नाटककारों को रामलीलामूलक मंच के विकास की दिशा में सक्रिय किया था। देवकीनंदन त्रिपाठी के 'सीतास्वयंवर', मधुकर-कृत 'रामलीलाविहार' और दामोदर शास्त्री प्रणीत 'रामलीला' के पीछे उन्हीं की प्रेरणा थी। अपने देहांत के बाद भी वे रामलीला मंच के प्रेरक बने रहे, यह एक स्मरणीय तथ्य है। माधव शुक्ल की 'श्री रामलीला नाटक मंडली' (1898) उन्हीं के आदर्शों की ऊष्मा से संचालित हुई थीं।

भारतेन्दु का व्यक्तित्व अंतरप्रांतीय अथवा राष्ट्रीय था। उन्होंने हिन्दी रंगमंच को बंगाल से भी जोड़ना चाहा था। इस संदर्भ में 'जात्रा' से उनकी संपृक्ति ध्यातव्य है। बंगप्रेमी भारतेन्दु ने यदि 'विद्यासुंदर' (1868) में 'जात्रा' की लोकनाट्यशैली को लौकिक प्रेम के संदर्भ में मान्यता दी थी। तो 'श्री चन्द्रावली' में उनके भीतर के कृष्णभक्त ने 'रासलीला' के साथ-साथ 'जात्रा' की चैतन्य-चेतना को स्वायत्त किया था।

असम के 'अंकिया' और मिथिला के 'किरतनिया' नाट्यरूपों की तरह ही उत्तर भारत की 'रासलीला' पर भी बंगाल की उपर्युक्त लोकनाट्य-परंपरा का प्रभाव पड़ा था। चैतन्य एवं उनके शिष्यों की कृष्णभक्ति और यात्राओं ने ब्रजभूमि को स्पष्टतः अनुप्राणित किया था। भारतेन्दु को इस परिप्रेक्ष्य में भी देखने की आवश्यकता है। उनकी 'श्री चन्द्रावली' की अलौकिक प्रीति उस भक्तिभरित बंगीय लोकनाट्य की अंतर्वस्तु के निकट जान पड़ती है।

नाटककार भारतेन्दु ने अपनी कृतियों में जिस 'तमाशा' शब्द का उल्लेख किया है वह मुख्यतः लोकनाट्य-परंपरा से सूत्रबद्ध है। यों तो यह सामान्य लौकिक प्रदर्शन का द्योतन करता है, किन्तु महाराष्ट्र में इसकी पहचान लोकमंच के शृंगार-समन्वित हास्यमूलक खेल के रूप में है। भारतेन्दु ने 'पाखंड विडम्बन' (1872), 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' (1873) और 'प्रेमजोगिनी' (1875) में संभवतः इसी लोकनाट्य का स्मरण किया है।

महाराष्ट्र में 'तमाशा' की स्थिति एक फूहड़ लोकनाट्य जैसी रही है, किन्तु वहां के प्रबुद्ध जनों ने इसके स्तरोन्नयन का सार्थक प्रयास किया है। उन्होंने इस नाट्यरूप को क्रमशः समाज-सुधार और राजनैतिक चेतना के फैलाव के लिए नियोजित किया था। भारतेन्दु इन मनीषियों के समानधर्मा जान पड़ते हैं, जिन्होंने 'तमाशा' को धार्मिक-चारित्रिक विकृतियों के निराकरण का आयुद्ध बनाया था।

'पाखंड विडंबना', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' और 'प्रेमजोगिनी' में 'तमाशा' के पिछले और भद्दे हास्य को व्यंग्य की स्तरीयता प्रदान की गयी है। धर्मगत पाखंड और अंतर्विरोधों पर प्रहार करने में नाटककार कहीं भी अमर्यादित नहीं हुआ है।

'अंधेर नगरी' (1881) के प्रसंग में 'तमाशा' अनुल्लिखित है, किन्तु यह भारतेन्दुकालीन जीवन-मंच का सार्वकालीन खेल है। यहां सड़क से शासन तक तमाशा ही तमाशा दृष्टिगत होता है। फांसी पर चढ़ने की आपाधापी का दृश्य तो इस तमाशे की पराकाष्ठा है। पूरा प्रहसन 'गोलमाल' का लेखा है। यहां नाटककार ने लोकमंच के खेल तमाशा को बाजार, राजनीति और न्याय के यथार्थ की अभिव्यक्ति का सफल माध्यम बनाकर मनोरंजन में निहित मध्दुद्देश्य का साक्षात्कार कराया है।

लोकजीवन में अनेक कौतुकजीवी लोगों का अस्तित्व रहा है। ये अपने कार्यकलापों से जनता को प्रसन्न करने का धंधा करते हैं। वानरों का नचाने वाले मदारी, हाथों की सफाई दिखाने वाले और इन्द्रजाल फैलाने वाले बाजीगर, उछल-कूद मचाने वाले भांड़ तथा बहुविध रूप भरने वाले बहुरुपिये लोकमंच के पुराने अभिनेता हैं। ये अपने कार्यकलापों से जनता को प्रसन्न करने का धंधा करते हैं। वानरों का नचाने वाले मदारी, हाथों की सफाई दिखाने वाले और इन्द्रजाल फैलाने वाले बाजीगर, उछल-कूद मचाने वाले भांड़ तथा बहुविध रूप भरने वाले बहुरुपिये लोकमंच के पुराने अभिनेता हैं। ये अपने कौतुकों से लोगों को आह्लादित करते रहे हैं। भारतेन्दु ने बहुरुपियों, भांड़ों और वानरों के खेलों का अपने नाट्य-साहित्य में युगानुरूप विनियोग किया है। 'पांचवें पैगम्बर' (1873), 'विषस्य विषमौषधम्' (1876) और 'बंदर सभा' (1879) शीर्षक रचनाएं इस संदर्भ में विचारणीय हैं।

अमानत की 'इन्दरसभा' की पैराडी के रूप में रचित 'बंदर सभा' वानरी लीला को आधुनिक आयाम देती है। इसमें बंदर राजा और शुतुरमार्ग परी के माध्यम से तत्कालीन विसंगतियों की विडंबना की गयी है। इसी तरह 'विषस्य विषमौषधम्' में भांड़ के चरित्र को आधुनिक रूप दिया गया है और 'पांचवें (चूसा) पैगम्बर' में बहुरुपिये के स्वांग में नये जमाने की बुराइयों की आलोचना की गयी है।

भारतेन्दु प्रहसनों की तरह की 'भाण' को भी हास्यधर्मी ज्ञापित करते हैं। यह एकपात्रीय नाट्य-रूप एक अंक का होता है। जयशंकर प्रसाद ने इस शास्त्रीय संस्कृत-रूपक को भांड़ों के कार्यकलापों से ठीक ही जोड़ा है। अभिजात साहित्य पर लोकनाट्य के प्रभाव को

द्योतित करने वाला यह नाट्य-भेद मुख्यतः शृंगारहाट की गतिविधियों को उजागर करता रहा है। इसका केन्द्रीय पात्र 'विट' होता है।

प्राचीन काल से ही भण्ड या भांड़ समाज का मनोरंजन करते रहे हैं। अपने करतबों, मुद्राओं और वक्तव्यों से जनता को हंसाने वाले इन पेशेवर लोगों की स्थिति अराजकीय विदूषकों-जैसी रही है। भारतेन्दु इनकी अभिनय क्षमता और गिरावट—दोनों से परिचित थे। उन्होंने इनके 'भ्रष्ट' खेल को शिष्ट बनाने का प्रयत्न किया था। उन्हें संस्कृत के भाण-साहित्य में निरूपित वैशिक जीवन का हास्य रास नहीं आया था। इसी तरह भांड़ों की फूहड़ प्रस्तुतियां उनकी सुरुचि को ग्राह्य नहीं थीं। उन्होंने उक्त भण्ड-परंपराओं का मार्जन करते हुए रूढ़िबद्ध और स्तरहीन हास्य को राजनैतिक व्यंग्य में परिणत कर दिया था। 'विषस्य विषमौषधम्' और 'संडमंडयोः संवादः' (1878) उनके इस पराक्रम को मूर्त करते हैं। ध्यातव्य है कि उभयत्र भण्डाचार्य अपनी नई भूमिका में दृष्टिगत होते हैं।

'विषस्य विषमौषधम्' अंग्रेजों के द्वारा एक देशी राजा को अधिकारच्युत करने के वृत्तान्त पर अवलंबित विशिष्ट कोटि का भाण है जिसके नायक का नाम 'भण्डाचार्य' भांड़ों के खेल से अपनी संपृक्ति व्यक्त करता है। इसमें 'आकाशभाषित' की परंपरा 'किं ब्रवीसि' वाली शैली देखी जा सकती है, किन्तु यह 'विट' तथा वीर एवं शृंगार रसो से विरहित एक युगीन राजनैतिक प्रश्न पर केन्द्रित रूपक है, जिसमें लोकमंच के भांड़ के कुरुचिपूर्ण खेल को संशोधित कर समुन्नत और युगानुरूप बनाया गया है। वेश्यावीथी के विट और बेलगाम भांड़ के व्यक्तियों का यह बदलाव नाट्यशास्त्र ही नहीं, लोकनाट्य की परंपराओं का विवेकपूर्ण परिष्कार है।

भांड़ों की तरह बहुरुपिये भी जनजीवन को अपने कौतुकों और वेश-विन्यास से रंजित करते रहे हैं। रूप बदलने की कला बड़ी प्राचीन है। रामकथा के हनुमान और कृष्णकथा के नायक इस संदर्भ में स्मरणीय है। 'संदेशरासक' के कवि उद्दहमाण ने रासकों के अभिनय-क्रम में बहुरूप धारण करने वाले नटों का उल्लेख किया है। लोकमंच के इन अभिनेताओं की सक्रियता पूरे मध्यकाल में देखी जाती है।

भारतेन्दु ने एक सजग नाटककार के रूप में बहुरुपियों की अभिनयगत दक्षता पर ध्यान दिया था। लोकमंच के इन कलाकारों का प्रभाव 'श्री चन्द्रावली' के योगिनीरूपी छद्मवेशी कृष्णव पर देखा जा सकता है। इसी तरह 'पांचवें (चूसा) पैगम्बर' ककी साज-सज्जा और बोलचाल बहुरूपिये की याद दिलाती है। यहां भारतेन्दु ने लोकजीवन के एक कौतुकी को अपने नाट्य-साहित्य में स्थान देकर लोकमंच के रचनात्मक और साहित्यिक उपयोग को स्वस्ति प्रदान की है। उन्होंने चूसा को अपने समय के टिप्पणीकार के रूप में उपस्थित किया है। आंग्ल युग का यह बड़बोला व्यक्ति केवल स्वांग भरने वाला हास्यालंबन नहीं, सभ्यता का समीक्षक भी है। बहुरूपिये के सपाट और वर्गीय पात्र को व्यक्तित्वसंपन्न चरित्र बना देने की यह सूझ लोकनाट्य में देशकालगत प्रासंगिकता और साहित्यिक अर्थवत्ता की सफल खोज है। ❑

'मन हुआ पलाश' कविता-संग्रह का लोकार्पण

रांची की सुप्रसिद्ध कवियित्री रश्मि शर्मा के सद्य प्रकाशित कविता संग्रह *'मन हुआ पलाश'* का विमोचन समारोह रांची विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. रमेश कुमार पांडेय की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित डॉ. महुआ माजी ने कहा कि रश्मि न सिर्फ कविता लिखती हैं बल्कि विभिन्न विधाओं में लिख रही हैं। मुझे पूरी उम्मीद है कि एक दिन झारखंड का बड़ा नाम बनेंगी। इनकी कविताएं मन को स्पर्श करने वाली है। सबके मन को आकर्षित करता है।

कुलपति डॉ. रमेश कुमार पांडेय ने कहा कि मैं रश्मि शर्मा को ढेरों बधाई देता हूं। यह रांची विश्वविद्यालय की पूर्व छात्रा रही हैं। यह और लिखें, और रचें हमारी शुभकामना है। मुझे यह किताब इसलिए ज्यादा पसंद आयी क्योंकि इसमें प्रकृति से जुड़ी ढेरों कविताएं हैं।

विशिष्ट अतिथि के तौर पर डॉ. अशोक प्रियदर्शी ने कहा कि देखने से कविता सरल लगती है मगर, एकांत में पढ़ने से इसके कई अर्थ खुलकर सामने आते हैं। इसे घूंट-घूंट पीने की जरूरत है। बीएड कॉलेज की प्राचार्या प्रभा दीक्षित ने कहा कि ऐसी रचनाएं सभी स्त्री मन को छूती हैं। सभी मनोभावों का चित्रण है जो प्रशंसनीय है।

कृति चर्चा करते हुए वीणा श्रीवास्तव ने कहा कि नारी मन की वेदना को खूब उकेरा है रश्मि ने। नारी केवल प्रशंसा नहीं चाहती। उनकी कविताएं विविध रंगों को खुद में समेटे हुए है।

इस अवसर पर कवियित्री रश्मि शर्मा ने अपने आत्मकथ्य में बोलते हुए कहा कि 'मन हुआ पलाश' के जरिये मैंने अपनी अनुभूति के कुछ क्षण सबके साथ बांटने का प्रयास किया है। मेरे लिए कविता कर्म एक अकुशल जुलाहे के ताने-बाने जैसा रहा है, जो अपने चारों तरफ बिखरी सूत की लच्छियों को मन की खड्डी पर लगातार चढ़ाता रहे, इस उम्मीद के बिना भी कि इन रेशों के कोई कपड़ा भी बना सकता है।

आर्शीवचन देते हुए डॉ. हरेराम त्रिपाठी चेतनजी ने कहा कि रश्मि वो कवियित्री नहीं जो कमरे में बैठकर रचे। वह दुनिया घूमती हैं इसलिए हर रंग हैं उनकी कविताओं में। और प्रेम तो सृष्टि का सार है, इसलिए उससे भागना नहीं चाहिए।

विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ. जंगबहादुर पांडेय ने सभी अतिथियों का स्वागत किया। दीप प्रजवलन के बाद सुदीक्षा और लावण्या ने नृत्य की प्रस्तुति दी। छोटी बच्ची आद्या भगत ने वंदे मातरम गाकर सबका मन मोहा। उसके बाद पुस्तक का लोकार्पण सम्माननीय अतिथियों द्वारा किया गया। रश्मि शर्मा की कविताओं का पाठ रांची की कवियित्रयों क्रमशः रेणु मिश्रा, संगीता कुजारा टाक, मुक्ति शाहदेव, सीमा तिवारी, आलोका, राजीव थेपड़ा और कलावंतीजी द्वारा किया गया। कुमार बृजेन्द्र ने शानदार तरीके से मंच संचालन किया और दर्शकों को बांधे रखा। धन्यवाद ज्ञापन श्री पांडेय दयानंद शर्मा ने किया। **—स.ज. प्रति.**

'बा'

❑ गिरिराज किशोर

गांधीजी को लेकर एक बड़ा और चर्चित उपन्यास प्रस्तुत कर चुके श्री गिरिराज किशोर ने अब बा पर कलम उठायी है। बा पर कुछ भी लिखना बहुत कठिन था। नहीं के बराबर जानकारियां। 'पहला गिरमिटिया' की सामग्री जुटाने में उन्हें कोई दो हजार पुस्तकों से मदद मिली थी। और 'बा' उपन्यास लिखते समय मुश्किल से दो पुस्तकें सामने थीं। वे उन सब लोगों से मिले, जिन्हें कस्तूरबा के बारे में थोड़ी-सी भी जानकारी थी और उन जगहों पर गये, जहां बा ने थोड़ा या बहुत समय बिताया था। इस तरह बनी यह कथा, यह इतिहास बा के अलावा खुद बापू के दो और रूपों को भी सामने रखता है–पति और पिता का रूप। प्रस्तुत है 'बा' का एक अंश, जो बा-बापू : 150 के अवसर पर क्रमशः प्रकाशित होंगे। –संपा.

मोहनदास दो दिन थाने में अलेक्जेन्डर की सुरक्षा में मेहमान की तरह रहे। पति-पत्नी ने मोहनदास का पूरा ध्यान रखा। दो दिन में जब वातावरण शांत हो गया तो अलेक्जेन्डर स्वयं गांधी को लेकर रुस्तमजी के घर आये। कस्तूर जिस बेगानपन के भाव से आयी थी, दो दिन में उसके भाव में परिवर्तन आ गया था। जो सुरक्षा और अबाध प्रेम पूरे परिवार से मिला था कस्तूरबाई के मन में, न केवल उन सबके आदर और कृतज्ञता भर दी थी बल्कि रुस्तमजी के कारण कस्तूरबाई को पहली बार अहसास हुआ था कि उसके पति का बाहर कितना सम्मान है। उसे यह भी अनुभव हुआ कि सहिष्णुता और त्याग सम्मान में कितनी वृद्धि कर देता है। यश और स्वीकृति संकट से गुजरने पर ही मिलते हैं।

बच्चों के साथ पारसी परिवार में रहना दूसरी तरह की समस्या उत्पन्न कर रहा था, पर यह सोचकर कि चन्द दिन की बात है मन शांत हो जाता था। जिस संकट से पूरा परिवार गुजरा था वह विचित्र था। जो संकट कस्तूरबाई और बच्चों के सामने था, दूसरे प्रकार के भयावह संकट से बाहर मोहनदास गुजर रहे थे, दोनों में कोई साम्य नहीं था। राजकोट के सुरक्षित और पवित्र एकांत जनानखाने की रसोई से, खुले मुंह कस्तूरबाई कभी बाहर नहीं आयी थी। यहां वह रोजमर्रा की ऐसी अपरिचित दुनिया में धकेल दी गयी थी, जिसमें औरत मर्द खुले मुंह साथ बैठते थे, बतियाते थे, बाहर आते जाते थे। खुले मुंह ही नहीं, उघड़े सिर भी। बात यहीं तक नहीं थी, जो खाना खाना पड़ा था वह अरुचिकर था। बच्चों को खिलाने के लिए अतिरिक्त परिश्रम करना पड़ता था जिससे मेजबानों को पता न चले कि बच्चों को खाना पसंद नहीं। हर घर में, वहां रहने वालों के खान-पान की गंध बस जाती है। उसका विस्तार आकर्षण से विकर्षण तक रहता है। अतिथि को उस गंध के अनुरूप अपने को तैयार करना पड़ता है। कस्तूर और बच्चों को घर में घुसते ही उसका अहसास हो गया था। गंध और उबकाई साथ-साथ महसूस हुए थे। उबकाई तो किसी तरह टाली भी जा सकती है पर गंध अंदर समा जाती है।

पारसी परिवार प्रतिदिन मछली खाता था। वैष्णव के लिए मांस-मच्छी खाना सदियों से निषिद्ध माना जाता था। इसलिए रुस्तमजी परिवार के अनुग्रह को, अपने घर जाने और मन का खाना बनाकर अपने परिवार को खिलाने के उत्साह ने कम कर दिया था। दो दिन बाद मोहनदास के आने पर जब कस्तूरबाई उनके घर से विदा हुई तो मन में दोनों भावनाएं मिली-जुली थीं।

अनुग्रह और मुक्ति। आतिथ्य में भोजन की विचित्र अहम भूमिका होती है, यह कस्तूरबाई ने पहली बार अनुभव किया था। कस्तूरबाई आते समय कितनी असहज थी, पर वह अनुभव अल्पकालीन साबित हुआ था। आत्मीयता के विस्तार ने दोनों परिवारों को सदा के लिए मित्रवत बना दिया था। उसका कारण यह भी था कि दोनों परिवारों ने वह त्रासदी साथ-साथ भोगी थी। संवेदना की उस कड़ी ने भी दोनों को बांध दिया था। रुस्तमजी के बेटे जाल रुस्तमजी ने बच्चों और कस्तूरबाई को सबसे अधिक गहराई से अनुभव किया था, जब पगलाई भीड़ ने रुस्तमजी का घर घेर लिया था।

रुस्तमजी के घर से पति के साथ अपने घर जाते हुए कस्तूरबाई बहुत खुश थी। वह पहली बार किसी के अधीन नहीं रहेगी, उसका नया घर उसके अधीन होगा। अब वह कस्तूरबाई से कस्तूरबा हो गयी थी। रुस्तमजी के घर के बच्चे भी हरि और मणि की तरह उसे बा कहकर संबोधित कर रहे थे। बा के रूप को यह व्यापक स्वीकृति थी। घर पहुंचकर कस्तूर ने पहले जायजा लिया। दुमंजिला पांच कमरों वाला बड़ा मकान। बाहर लोहे का दरवाजा लगा था, उसे देखकर मन में उसे सुरक्षा की अनुभूति हुई। उसके बाद एक छोटा-सा बगीचा था, समुद्रमुखी बालकनी थी। ऐसा खुला मकान पहले नहीं देखा था। समुद्री हवाओं की पनियाली हवाएं पोरबंदर में गुजरे बचपन की याद दिला रही थीं। नीचे की मंजिल यूरोपियन ढंग से सजी थी। कस्तूरबा को विचित्र लगा पर चुप रही। मोहनदास ने स्वयं बताया किसी धनी व्यवसायी मुवक्किल ने सजवाया था। बैठक में कालीन बिछा था, सोफा था। जो न पोरबंदर में देखा था और न राजकोट में। दो आराम कुर्सियां थीं। एक किताबत थी जिसमें मोहनदास की कानून की किताबें लगी थीं। खाने का कमरा था जिसमें एक चौकोर मेज लगी थी, आठ कुर्सियां चारों तरफ रखी थीं। कानस थी। ऊपर के कमरे सादे थे। एक-एक कपड़े रखने की अलमारी और सोने के लिए तख्त थे। सबसे परेशानी की बात थी कहीं भी किसी देवी-देवता की तस्वीर नहीं थी जहां कस्तूरबा पूजा कर सके। राजकोट की तरह भजन-कीर्तन के लिए आंगन भी नहीं था। तुलसी का बिरवा तक नहीं था जिसकी उपस्थिति मात्र से सब कष्ट दूर हो जाते हैं। इतना सब है पर धर्म-कर्म कहीं नहीं। उसके मन ने पूछा क्या यहां हिन्दू नहीं रहते या इन सब बातों को त्याग दिया? कहीं इसके पीछे उसके पति तो नहीं?

कस्तूरबा छोटे से छोटे काम स्वयं देखती थी। बच्चों और एक दो नौकरों की सहायता से घर की सफाई करने और आरामदेह बनाने में कई दिन लग गये। साथ ही नई किस्म की असुविधाजनक रसोई में अपने परिवार की पसंद के व्यंजन बनाने के प्रयत्न भी करती थी। उसके लिए रसोई का मतलब था परिवार के सदस्य और अतिथियों की तृप्ति। कस्तूरबा को तकलीफदेह और विलायती किस्म की रसोई में अपनी इस मान्यता को व्यवहार में लाना पड़ रहा था। सबसे बड़ी परेशानी थी खड़े होकर जूते पहने खाना बनाने की। मोहनदास जूते पहनकर खाना बनाने के बुरी तरह समर्थक थे, भले ही पैर पिराते रहें। कस्तूर ने ससुराल में हमेशा जमीन पर बैठकर चूल्हे पर खाना बनाया था। यहां सीने से ऊंची मेज पर खाना बनाना पड़ता था, वैसे भी कद छोटा था। लकड़ियों से जलने वाला एक छह प्लेट का स्टोव था, जिसे कस्तूरबा को मोहनदास ने जलाना सिखाना था। उसे जलाते हुए डर लगता रहता था कि जिसे वह जला रही है वह ही उसे न जला दे। हर स्थिति से जूझना उसकी नियति थी।

कस्तूरबा को राजकोट याद आता था वहां वह अकेली नहीं थी। देवरानी-जेठानी सब रसोई का हिस्सा थे। जब वह वहां अपने विला में खड़े होकर फल काटती या सब्जी छीलती थी तो उसे अकेलापन सालता था। अकेले घर संभालना, रसोई देखना और खाना परसना अपने को पेरने की तरह लगता था। राजकोट में सबका काम बंटा हुआ था। सब मिलकर खाना बनाते थे। खाना बनाना अनवरत प्रक्रिया थी। चूल्हा ठंडा ही नहीं होता था। बच्चों को देखना, कपड़े पछारना सब मिल-जुलकर काम करते थे। सबसे अधिक याद वहां की गप्प-गोष्ठी आती थी। उसमें हंसी-मजाक, लगायी-बुझाई, आसपास की खबरें, सब कुछ रहता था। वे साथिनें बहुत याद आती थीं जिन्हें वह छोड़ आयी थी। अब देवरानी-जेठानी और बच्चों की खबर केवल लक्ष्मीदस की चिट्ठी से मिलती थी। मोहनदास जल्दी-जल्दी पढ़कर कस्तूरबा को सुना देते थे। कई बार उसे लगता था अभी कुछ समय पहले अपनों के बीच थी, अब यहां अनजान जगह और लोगों के बीच है।

कस्तूरबा अपनी सास पुतलीबा की तरह घर की रानी थी। तब कस्तूरबा को लगता था कि बा की बांधी बंधती है और उनके खोले खुलती है। दीवान साहब हर बात में उनसे मशवरा करते थे। जब तीनों बच्चों की शादी हुई थी तो भी मुख्य भूमिका, सुना है, पुतलीबा की ही थी। यहां डरबन में जब उसका अपना घर हुआ तो समझ में आया कि दायित्व निबाहना कितना कठिन होता है। पोरबंदर की तरह डरबन का यह विला भी कांटों का ताज था। एक दिन गांधी भाई ने कस्तूर से कहा, 'देखो, मेरे दफ्तर के कर्मचारी भारतीय हैं, इनके पास रहने की जगह नहीं है, हमारा घर काफी बड़ा है। अगर हम इन्हें अपने घर में रख लें तो इनकी मुश्किल आसान हो जायेगी।'

कस्तूरबा की यह बात समझ में आ गयी। उसने सोचा दो बच्चों और हम दोनों के लिए घर काफी बड़ा है। अगर ये लोग भी आ जायेंगे तो घर में अकेलापन भी नहीं लगेगा, चहल-पहल भी रहेगी और मोहनदास के लिए भी आराम हो जायेगा। उसने हां भर दी। धीरे-धीरे लोगों को पता

चल गया कि मि. गांधी का घर सबकी पनाहगाह है। एक और दिन मोहनदास ने कस्तूरबा के पास आकर सड़क पर खड़े आदमी को दिखाकर कहा, 'यह आदमी कोढ़ी है। इसके मालिक ने निकाल दिया है। इसके पास कोई रहने को जगह नहीं। यह नीचे मियामी में पड़ा रहेगा। किसी को तंग नहीं करेगा।'

कस्तूरबा ने एक क्षण सोचा, फिर झिझकते हुए कहा, 'ठीक है, रखकर देख लो, बच्चों का घर है।'

मोहनदास ने उसे लाकर मियामी में ठहरा दिया। रोज उसकी अपने हाथ से पट्टी करते थे। धीरे-धीरे घर वालों में उसे लेकर खुसर-पुसर चालू हो गयी। कस्तूर से भी कहा गया। बच्चे जब मियामी के पास से गुजरते थे नाक पर कपड़ा रख लेते थे। आखिर कस्तूरबा को मोहनदास से कहना पड़ा, इस आदमी को लेकर सब दुःखी भी हैं, डरे हुए भी हैं। बच्चे कहते हैं जब मियामी के पास से निकलते हैं तो बदबू आती है। मोहनदास उसे निकालने के लिए तैयार नहीं थे। दबाव निरंतर बढ़ता जा रहा था। आखिर मजबूर होकर उन्होंने उसे ले जाकर अस्पताल में दाखिल कर दिया। कोढ़ी के जाने के बाद कस्तूरबाई बहुत देर तक सोचती रही, देह ही आदमी की सबसे बड़ी मित्र भी है और शत्रु भी। मरने पर तो जो होता है सो होता ही है, जीवित रहते भी देह शत्रु बन जाती है! जाते समय कोढ़ी की आंखों में कातरता और दुःख उतर आया था। कस्तूरबा को लगता था, उसके बारे में सोचते हुए उसकी आंखों में भी दुख उतर आता है। फिर यह सोचकर ही मन ठहरता था कि शरीर ही रोगों की पौधशाला भी होती है।

उसको अस्पताल में छोड़कर आने के बाद मोहनदास कई दिन तक चुपचाप रहे थे। कस्तूर को लग रहा था जैसे सेवा का उनका यह प्रयोग आरंभ होने से पहले ही समाप्त हो गया। पर उसके सामने भी धर्म संकट था, बच्चे अपनी बा से ही कहते थे। मोहनदास का काफी समय उसकी मरहम-पट्टी में गुजर जाता था। उन्हें अपनी दिनचर्या फिर बदलनी पड़ी थी। इतने समय तक बच्चों से दूर रहने के कारण उन्हें लगता था कि वे अधिक समय बच्चों के संग गुजारें। बच्चों को भी उनकी जरूरत थी। कस्तूर सबसे ज्यादा उनकी पढ़ाई को लेकर परेशान रहती थी। सबसे बड़ी समस्या स्कूलों को लेकर थी। अच्छे स्कूल गोरों के लिए थे और निम्न दर्जे के स्कूल कालों के लिए। मोहनदास चाहते तो यूरोपियन स्कूल में बच्चों को भर्ती करा सकते थे। गांधी को यह स्वीकार नहीं था कि जो स्कूल भारतीयों को उपलब्ध नहीं हैं, अपवादस्वरूप अपने बच्चों को वहां दाखिल करें। उसके दो कारण थे, एक तो बच्चों को भाषाई कुंठा का शिकार होना पड़ेगा, दूसरे यूरोपियन स्कूल में पढ़ने की अहमन्यता उन्हें भारतीय बच्चों से काट देगी। मिशनरी स्कूल में भारतीय बच्चे पढ़ते थे, वहां योग्य अध्यापक भी थे, उनके अलावा दूसरे वर्ग के अध्यापक भी थे पर मोहनदास को अपर्याप्त लगते थे। इसलिए बच्चों के नाम किसी स्कूल में नहीं लिखे जा सके। कस्तूरबा के मन में कई बार बेतुके सवाल उठते थे, क्या मेरा साया बच्चों पर पड़ गया? मेरी तरह ये भी अनपढ़ रह जायेंगे? अपने बापू पर कोई नहीं जायेगा? मणिलाल तो अभी छोटा था, हरिलाल तेज-तर्रार था और गोकुलदास शर्मीला था। तीनों की उम्र उन्हें पीछे छोड़कर आगे बढ़ रही थी। कस्तूर को बच्चों का भविष्य दिखाई पड़ रहा था। उसने बिना लाग-लपेट के मोहनदास से पूछा, 'बच्चे कब स्कूल जाना शुरू करेंगे?'

वे बोले, 'मैंने एक गोरी अध्यापिका का इंतजाम किया है, वह घर पढ़ाने आया करेगी।'

जब मेम पढ़ाने आने लगी तो बच्चों की कठिनाई और बढ़ गयी। वह अंग्रेजी में पढ़ाती थी, बच्चे ठेठ गुज्जू थे। वह धीरे बोलती थी, संवाद नहीं तो पढ़ाई कैसी। इक तरफा बोलकर चली जाती थी। कस्तूरबा देख-समझकर भी चुप थी। संवाद की समस्या वहां भी थी। कस्तूर को पति से कहना पड़ा। आखिर वह इंतजाम भी निरस्त हो गया। मोहनदास ने बच्चों को स्वयं पढ़ाने का जिम्मा लिया। कस्तूर को अपनी घटना याद आ गयी। जैसे उन्होंने उसे पढ़ाने की जिम्मेदारी ली थी कहीं वैसी ही जिम्मेदारी इन बच्चों के बारे में भी लेने वाले तो नहीं? मन ही मन हंसी आ गयी, उसमें तो वह भी बराबर की दोषी थी। पर चुप रही। मोहनदास इतने व्यस्त थे कि रात को देर से लौटते थे। तब बच्चे थके हो थे, ऊंघने लगते थे। सबेरे जल्दी उठाकर पढ़ाते थे। तब भी अधजगे से रहते थे। कस्तूरबा देख रही थी। आखिर कस्तूरबा को कहना पड़ा, 'ऐसे नहीं चलेगा। स्कूल बच्चों को पढ़ाने के लिए ही होते हैं। बच्चों को स्कूल जाना चाहिए। आप तो स्वयं स्कूलों में पढ़े हैं। मैंने तो सुनकर जाना है। दूसरे बच्चों को पढ़ते देखेंगे तो इनका भी मन होगा।'

कस्तूरबा कई बार सोचती थी अगर वह पढ़ी-लिखी होती तो अपने बच्चों का दाखिला स्वयं करा आती। यहां न उसकी बात कोई समझेगा, न वह समझा पायेगी। अब पछताए क्या होता है, गलती उसी की है।

दक्षिण अफ्रीका उसकी परीक्षाओं का जंगल था। पोरबंदर और राजकोट की याद आना स्वाभाविक था। पोरबंदर में पीहर था, वहीं ब्याह के भी गयी थी। राजकोट में ससुराल तो थी ही अब दौराना-जिठाना भी था। लक्ष्मीदास ससुर की तरह थे, सुख-दुःख का पूरा ध्यान रखते थे। पति के बिरादरी-बाहर का दंड सब भोग रहे थे। कभी किसी ने यह जाहिर नहीं होने दिया था इसका कारण उसका पति है। घर में रहते बनवास, बनवास से कठिन परित्याग होता है। सब मिलकर बांट रहे थे। बांट ही नहीं रहे थे सहन भी कर रहे थे। पुतलीबा सदा कहती थीं, दुःख प्रारब्ध का और भोग मानुष का।

... क्रमशः अगले अंक में

सुधार की राह पर आगे बढ़ें मौलवी

❑ तुफैल अहमद

जब इस्लाम में यह नहीं कहा गया है कि लाउस्पीकर से अजान देने के बाद ही नमाज, नमाज मानी जाएगी तब फिर इमामों को अपने स्तर पर पहल करनी चाहिए।

मेरा मानना है कि कुरान और हदीस में तो किसी प्रकार का बदलाव मुमकिन नहीं, लेकिन मुसलमानों की सामूहिक सोच में तब्दीली जरूर मुमकिन है। देश के बंटवारे के बाद मुसलमानों का राजनीतिक नेतृत्व पाकिस्तान चला गया और इसका नतीजा यह हुआ कि मुसलमानों का बौद्धिक नेतृत्व मौलवियों के हाथों में आ गया। उन्होंने अपनी सीमित धार्मिक समझबूझ के मुताबिक आम मुसलमानों की सोच-समझ को आकार देना शुरू कर दिया। बेहतर हो कि मुसलमानों में समाज सुधार का काम भी मौलवी लोग ही आगे बढ़कर करें। पिछले कुछ वर्षों से यह बात देखने में आ रही है कि कई शहरों में मुसलमान जुमे और ईद की नमाज मस्जिद और ईदगाह से लगी सार्वजनिक जगहर पर पढ़ने लगते हैं। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि मस्जिद के अंदर नमाज पढ़ने की जगह नहीं होती। जुमें और ईद की नमाज सामूहिक रूप से पढ़ी जाती है। इसकी वजह से नमाज पढ़ने के लिए ज्यादा से ज्यादा मुसलमान पहुंचते हैं। नमाज पढ़ाने वाले इमाम और मुस्लिम समाज के बुद्धिजीवी यह नहीं समझ पा रहे हैं कि सार्वजनिक जगह, जैसे सड़क और बाजार में समाज पढ़ने से दूसरे समुदाय के लोगों को परेशानी होती है। वे यह भी देखने से इन्कार करते हैं कि यह परेशानी मुसलमानों के खिलाफ तरह-तरह की भावनाओं को जन्म देती है। इस समस्या का एक आसान हल यह है कि मुसलमान जुमे और ईद की नमाज कई किस्तों में पढ़ें। इससे समाज में मुस्लिम-हिन्दू सौहार्द बना रहेगा। यह कहना गलत नहीं होगा कि मुसलमान कई बार ऐसा करते भी हैं। उदाहरण के लिए बारिश के मौसम में कई मस्जिदों में मुसलमान जुमे और ईद की नमाज किस्तों में पढ़ते हैं। यहां यह बताना जरूरी है कि सोशल मीडिया पर कई ऐसे वीडियो चल रहे हैं जिनमें यह देखा जा सकता है कि मुसलमान ट्रेन रोककर ईद की नमाज पढ़ रहे हैं। ऐसा काम करने वाले मुसलमान अपने खिलाफ नफरत का ही बीज बो रहे हैं।

एक और समस्या है जो आजकल सुर्खियों में छाई है और वह है लाउस्पीकर से अजान। आमतौर पर कोई हिन्दू या ईसाई अजान पर सवाल नहीं उठाता। दोपहर, शाम और रात की अजान पर किसी को कोई आपत्ति नहीं, लेकिन जब लाउस्पीकर से अजान पर सवाल उठाया जाता है तो आमतौर पर सिर्फ सुबह की अजान को लेकर उठाया जाता है। ऐसा इसलिए है कि उस वक्त तमाम लोग सोये रहते हैं। आजकल शहरों में लोग देर रात तक काम करते हैं और रात में भी एक बजे और उसके बाद ही सोते हैं, लिहाजा सुबह की लाउस्पीकर की अजान से उनकी नींद टूटती है। ऐसे लोगों में मुसलमानों के खिलाफ विरोधी भावनाएं उबाल लेने लगती है। इन हालात में यह जरूरी है कि मस्जिदों के इमाम समस्या को समग्र रूप से समझें। इस्लाम में यह कहीं नहीं कहा गया है कि लाउस्पीकर से अजान देने के बाद ही नमाज, नमाज मानी जायेगी। क्या यह बेहतर नहीं होगा कि सुबह की अजान लाउस्पीकर से दी ही न जाये? आजकल हर नमाजी के पास मोबाइल फोन होता है, जिसमें अलार्म की सुविधा होती है। इसकी मदद से वे सुबह की नमाज के वक्त आराम से उठ सकते हैं। वैसे भी देश के तमाम राज्यों में बाकायदा ऐसे कानून लागू हैं कि रात के दस बजे से सुबह छह बजे तक लाउस्पीकर का इस्तेमाल वर्जित है। ऐसे में नमाजी जैसे सुबह तड़के की ट्रेन पकड़ने के लिए पूरी एहतियात के साथ उठ जाते हैं उसी तरह सुबह की नमाज के मामले में भी उन्हें यही करना चाहिए।

मुसलमान यह समझें कि अगर हिन्दू सवाल नहीं उठा रहे हैं तो इसका यह मतलब नहीं कि नमाजियों के साथ-साथ उन्हें भी सुबह-सुबह जगा दिया जाये। लाउस्पीकर से दी जाने वाली अजान एक ऐसी राजनीतिक प्रक्रिया है जो मजहबी फर्ज यानी नमाज के लिए जरूरी नहीं है। पाकिस्तान के कुछ शहरों में देखा गया है कि नमाज के समय एक इलाके में ही दर्जनों मस्जिदों से एक साथ लाउस्पीकर बजने शुरू हो जाते हैं। ईरान में मस्जिदों के लाउस्पीकरों की ध्वनि को रात के समय कम रखने के लिए कानूनी प्रावधान मौजूद हैं। अगर इस मामले में खुद मस्जिदों के इमाम ही आगे बढ़कर पहल नहीं करेंगे तो फिर मुसलमानों के खिलाफ बढ़ती हुई दुर्भावना के लिए वे खुद ही जिम्मेदार होंगे।

एक और समस्या मदरसों की है। उत्तर प्रदेश और बिहार के कई मदरसों में खुलेआम तरह-तरह की हेराफेरी होती है। मुमकिन है कि ऐसा अन्य राज्यों के मदरसों में भी होता हो। हैरानी की बात है कि हेराफेरी कराने वाले हिन्दू या किसी और धर्म के लोग

नहीं होते, बल्कि इसमें भी संदेह की सुई मौलवियों की ओर ही मुड़ती है। मौलवियों को इस्लाम का रक्षक माना जाता है, लेकिन मदरसों में ऐसे लड़के-लड़कियों का दाखिला करा दिया जाता है जो कभी पढ़ने ही नहीं आते। उन्हें सिर्फ परीक्षा का फार्म भरकर नकल कराके पास कराना कई लोगों का पेशा बन गया है। कदाचार-भ्रष्टाचार के इस खेल में मौलवी ही सबसे आगे हैं। ऐसे में यह कहना गलत नहीं होगा कि मदरसों का काम अब शिक्षा देना नहीं रह गया है। अफसोस की बात है कि मौलवी लोगों ने मदरसों में शिक्षा का काम कम और सर्टिफिकेट बांटने का काम तब से ज्यादा करना शुरू कर दिया है जब से राज्य सरकारों ने मदरसों को वित्तीय सहायता देनी शुरू की है। यह जरूरी है कि राज्य सरकारें इस बात पर ध्यान दें कि मदरसे और मौलवी मुसलमानों की तरक्की में रोड़ा न बनने पायें। राज्य सरकारों से यह भी गुजारिश है कि वे मदरसा बोर्ड खत्म कर दें, क्योंकि वहां अब तरह-तरह की हेराफेरी ज्यादा होती है। मदरसों में पढ़ने वाले छात्र-छात्राओं से कहा जाये कि वे स्कूल बोर्ड का इम्तिहान पास करें। जब मुसलमान और हिन्दू एक ही बोर्ड से परीक्षा पास करेंगे तो दोनों समुदायों के बीच सद्भावना बढ़ेगी।

जिन मदरसों को सरकार से वित्तीय सहायता नहीं मिलती है वे जो चाहे पढ़ायें, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता, लेकिन जो मदरसे सरकारी सहायता से चलते हैं उनके लिए प्रावधान बदलने का सरकारों को पूरा अधिकार है। सरकारें सहायता इसलिए करती हैं ताकि वहां पढ़ने वाले लड़के-लड़कियां देश की प्रगति में योगदान कर सकें। मदरसों में विज्ञान, गणित, भूगोल और सामाजिक विज्ञान के जो अध्यापक नियुक्त होते हैं उनका मुसलमान होना जरूरी नहीं होना चाहिए। वे विषय हिन्दू या किसी और धर्म के अध्यापक भी पढ़ा सकते हैं और कहीं बेहतर पढ़ा सकते हैं। आज यह भी जरूरी हो गया है कि मदरसे संचालित करने वाली स्थानीय संस्थाओं में भी हिन्दू, ईसाई और दूसरे समुदायों के बुद्धिजीवी लोगों को भी शामिल किया जाये। अगर भारतीय राज्य किसी संस्था की वित्तीय सहायता करता है तो धर्म के नाम पर भेदभाव नहीं होने देना चाहिए। यह तभी मुमकिन है जब खुद मौलवी आगे आयें और मुसलमानों के खिलाफ मुसलमानों द्वारा ही फैलायी जाने वाली भावना को रोकने की कोशिश करें और दूसरे समुदायों से अलग रहने की प्रवृत्ति को छोड़ें। ❑

निजता पर उच्चतम न्यायालय का फैसला

फैसले की सात खास बातें

1. **जीवन और निजी स्वतंत्रता का अधिकार एक-दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते हैं। ये वो अधिकार हैं, जो मनुष्य के गरिमापूर्ण अस्तित्व का अभिन्न हिस्सा हैं। ये अधिकार संविधान ने गढ़े नहीं हैं बल्कि संविधान ने इन्हें मान्यता दी है।**
2. **प्राइवेसी (निजता) के अधिकार को संविधान संरक्षण देता है और यह जीवन और निजी स्वतंत्रता की गारंटी से पैदा होता है। प्राइवेसी का अधिकार, स्वतंत्रता और सम्मान की गारंटी देने वाले संविधान के अन्य मौलिक अधिकारों से भी मिलता है। जीवन और स्वतंत्रता संविधान ने नहीं दी है बल्कि केवल इन अधिकारों में राज्य के दखल देने की सीमा तय की है।**
3. **प्राइवेसी के संवैधानिक अधिकार को कानूनी मान्यता देना संविधान में कोई बदलाव करना नहीं है। और न ही कोर्ट कोई ऐसा संवैधाकि काम कर रहा है जो संसद की जिम्मेदारी थी।**
4. **प्राइवेसी की बुनियाद में निजी रुझानों या झुकाव को बचाना, पारिवारिक जीवन की पवित्रता, शादी, बच्चे पैदा करना, घर और यौन रुझान जैसी चीजें शामिल हैं। एकांत में अकेले रहने का अधिकार भी प्राइवेसी है। प्राइवेसी किसी व्यक्ति की निजी स्वायत्तता की सुरक्षा करती है और जिन्दगी के हर अहम पहलू को अपने तरीके से तय करने की आजादी देती है। अगर कोई व्यक्ति सार्वजनिक जगह पर हो तो ये इसका मतलब प्राइवेसी का अधिकार खतम हो जाना या छोड़ देना नहीं है।**
5. **संविधान अनुच्छेद 21 के तहत जिन मौलिक अधिकारों की गारंटी देता है, प्राइवेसी कोई अपने आप में पूर्ण अधिकार नहीं है। प्राइवेसी की सरहद लांघने वाले किसी भी कानून को वाजिब, सही और तर्कसंगत होना होगा।**
6. **प्राइवेसी के नकारात्मक और सकारात्मक दोनों पहलू हैं। नकारात्मक पहलू राज्य को नागरिकों के जीवन और निजी स्वतंत्रता के अधिकार का हनन करने से रोकता है। और सकारात्मक पहलू राज्य पर इसके संरक्षण की जिम्मेदारी देता है।**
7. **सूचना की निजता प्राइवेसी के अधिकार का ही एक चेहरा है। प्राइवेसी को न केवल सरकार से खतरा है बल्कि गैर-सरकारी तत्त्वों से भी खतरा है। हम सरकार से ये सिफारिश करते हैं कि डेटा प्रोटेक्शन के लिए कड़ी व्यवस्था की जाये।**

(बीबीसी से 'साभार')

तीन तलाक

सुप्रीम कोर्ट के फैसले से बड़ी ताकत मिली है

❑ जकिया सोमन

एक ही बार में फौरन तीन तलाक देकर शादी को खत्म करने की एक बुरी परंपरा पर आये सुप्रीम कोर्ट के फैसले का स्वागत इस रूप में होना जरूरी है कि इससे हमें एक नयी ताकत मिली है। निश्चित रूप से स्वतंत्र भारत के इतिहास में मुस्लिम औरतों के हक में यह एक ऐतिहासिक फैसला है। यह इस रूप में ऐतिहासिक है कि संविधान के प्रावधानों के बावजूद और मुस्लिम औरतों के हक में कुरान में दर्ज प्रावधानों के बावजूद बहुत सी मुस्लिम औरतों को उनके अधिकार नहीं मिल पाते हैं। इसमें कुछ तो मर्दों की मनमानी होती है और कुछ जागरूकता की कमी होती है। इस ऐतबार से आजादी के सत्तर साल बाद उन्हें ये अधिकार मिले हैं, जिससे उम्मीद बनी है कि मुस्लिम समाज में कुछ बदलाव जरूर आयेगा। यही नहीं, ऐसे फैसले सिर्फ मुस्लिम औरतों के हक के लिए ही नहीं काम आते हैं, बल्कि हमारे लोकतंत्र को भी एक मजबूरी देते हैं। ऐसे फैसलों से अदालतों पर भरोसा बढ़ता है और कमजोर से कमजोर लोग भी इंसाफ पाने के लिए फौरन कोर्ट का दरवाजा खटखटाते हैं। इसलिए यह फैसला आने वाले समय में एक ऐसे कानूनी हथियार का काम कर सकता है, जिसकी बदौलत कुरीतियों की बेड़ियों को आसानी से काटा जा सकता है।

जिस तरह से बीते सत्तर साल से बराबरी का संवैधानिक अधिकार मिले होने के बावजूद मुस्लिम औरतों को उनके हक से महरूम रखा गया है, इससे एक बड़ी संख्या में मुस्लिम औरतों ने अपने पीड़ित-शोषित होने को अपनी नियति मान बैठी थीं, लेकिन, अब यह बेड़ी कमजोर होगी। हम यही नहीं रुकेंगे, बल्कि आगे आने वाले दिनों में हर उस सामाजिक बुराई से लड़ेंगे, जिनका शिकार होकर मुस्लिम औरतों की जिन्दगी बर्बाद होती है। हम शोषित होने को नहीं, बल्कि अपना हक पाने को अपनी नियति बनायेंगे।

हमारे देश में सामाजिक बुराइयों का ताना-बाना ही पेचीदगी भरा होता है, और एक फैसले भर से उन्हें खत्म हुआ नहीं मान लेना चाहिए और यह संभव भी नहीं है। इसी सिलसिले में, फौरन तीन तलाक की समस्या एक बड़ी समस्या है, इसलिए यह महज एक फैसले से ही इसका हल मुमकिन नहीं है। अब इसको सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया से जोड़ना पड़ेगा। लेकिन हां, ऐसे अदालती फैसलों से हमें मदद जरूर मिलती है, जिसके सहारे हम सामाजिक बदलाव के लिए आगे बढ़ सकते हैं। समुदाय के अंदर लड़कियों और औरतों के बीच एक तरह की जागरूकता और शिक्षा का प्रसार तो करना ही पड़ेगा, ताकि वे कानूनी फैसलों की अहमियत को समझ सकें और गलत परंपराओं का शिकार होने से बच सकें। यह तभी मुमकिन है कि जेंडर जस्टिस (लैंगिक न्याय) और जेंडर इक्वलिटी (लैंगिक समानता) की दिशा में हम कुछ अच्छा कर पायेंगे। यहीं पर कानूनी फैसले हमारी मदद करते हैं और हमें अधिकार देते हैं कि हम अपने हक के लिए लड़ सकें और पितृसत्ता की मनमानी को रोकने के लिए आवाज बुलंद कर सकें।

समाज में मौजूद किसी भी बड़ी समस्या या बुराई को कानूनी तरीके से दूर करने की कोशिश सामाजिक बदलाव की लड़ाई का एक मजबूत हिस्सा होती है। हमारे जैसे लोकतांत्रिक देश में एक अच्छी कानूनी पहल हमेशा ही सामाजिक सुधार को बढ़ावा देने वाला होता है। इसलिए यह सोचकर नहीं बैठना चाहिए कि सामाजिक सुधार के लिए सिर्फ सामाजिक आंदोलन ही जरूरी है, बल्कि उसका साथ देने के लिए कानूनी पहलों की भी जरूरत होती है। मुस्लिम समाज में जिस तरह से गरीबी है, आर्थिक तंगी है और अशिक्षा है, उससे उस समाज में जागरूकता फैलाने में बहुत दिक्कतें आती हैं। एक समाज सशक्त और सक्षम तभी बनता है है, जब वह शिक्षित हो। और शिक्षित समाज ही सामाजिक सुधार को बढ़ावा दे सकता है। इसलिए शिक्षा को लेकर तो हमें काम करना ही है, साथ ही अपने जायज हक के लिए भी लड़ते रहना है।

आज अगर मुस्लिम समाज में शिक्षा पर जोर होता और लोग धर्म, ज्ञान-विज्ञान, परंपरा, शास्त्र आदि के बारे में कुछ ही सही मगर जानकारी रखते, तो यह मुमकिन नहीं होता कि कोई संगठन उस समाज की औरतों के हक के खिलाफ जाकर कोई मनमानी करे, जब संविधान ने सबको बराबरी का हक दिया है, तो फिर दूसरा उसे कैसे छीन सकता है? ऐसा ही पैगाम इस्लाम का भी है कि हर इंसान बराबर है और उनके अधिकार भी बराबर हैं। लेकिन, समाजों में जागरूकता की कमी और अशिक्षा के चलते तीन तलाक जैसी बुराइयां पनप जाती हैं। इन्हीं बुराइयों से लड़ने और उन्हें खत्म करने के लिए हमने भारतीय मुस्लिम महिला आंदोलन शुरू किया है। अभी यह हमारी पहली जीत है। हमें उम्मीद है और यकीन भी है कि आगे भी हम अपनी हर लड़ाई जीतेंगे। ❑

गतिविधियां एवं समाचार

भारत की आम जनता प्रेरणा ले चम्पारण सत्याग्रह से

वरिष्ठ गांधीवादी चिन्तक डॉ. रामजी सिंह ने कहा है कि भारत की आम जनता को सही न्याय पाना है तो वे इसके लिए चम्पारण सत्याग्रह से प्रेरणा ले। डॉ. सिंह देवीबाबू धर्मशाला, भागलपुर में अंग मदद फाउंडेशन, समन्वय परिवार, गांधी शांति प्रतिष्ठान-भागलपुर, विष्णु प्रभाकर प्रतिष्ठान-नोएडा, आचार्य लक्ष्मीकांत मिश्र प्रतिष्ठान की ओर से आयोजित एक संगोष्ठी में बतौर मुख्य अतिथि बोल रहे थे। संगोष्ठी का आयोजन महान स्वतंत्रता सेनानी शुभकरण चुड़ीवाला की पुण्यतिथि की पूर्व संध्या पर किया गया था। विषय था 'चम्पारण सत्याग्रह और उसके प्रभाव'। डॉ. सिंह ने कहा कि मौजूदा साल केवल चम्पारण सत्याग्रह की शताब्दी का साल नहीं है। इसके साथ प्रथम विश्वयुद्ध के साथ ही रूसी क्रांति की भी शताब्दी का साल है। अब तो युद्ध के भले नगाड़े पीटे जायें, लेकिन विश्वयुद्ध जैसा कोई युद्ध नहीं होने वाला है। उन्होंने साम्यवाद के लिए रूस में हुई क्रांति पर कहा कि व्यक्तिगत आजादी की उपेक्षा कर साम्यवाद भी नहीं टिक सकता है और ऐसे में केवल चम्पारण सत्याग्रह की शताब्दी यह साबित कर रही है कि आने वाले युग को गांधी की अहिंसा के शरण में ही आना होगा। उनके अहिंसक प्रयोग और रचनात्मक कार्यक्रम शांति और न्याय के लिए आज भी कारगर हथियार हैं।

डॉ. सिंह ने आगे कहा कि चम्पारण सत्याग्रह से गांधीजी ने निलहे अंग्रेजों के अत्याचार से परेशान किसानों को मुक्ति दिलायी। उन्हें भयमुक्त किया और लोक-शक्ति जगायी। गांधीजी ने यह काम अहिंसक तरीके से किया और पूरी दुनिया को अहिंसक प्रयोगों से रू-ब-रू कराया। उन्होंने महान स्वतंत्रता सेनानी शुभकरण चुड़ीवाला को गांधीजी का सच्चा अनुयायी बताया और कहा कि चाहे मुंगेर का भूकम्प हो या राजेन्द्र प्रसाद पर ब्रिटिश पुलिस द्वारा हमला, वे अपनी कार्यकर्ता टोली के साथ सक्रिय रहे। शुभकरण जी ने आम लोगों की जितनी मदद की है, उसे शब्दों में उल्लेख कर पाना संभव नहीं है। वैसा आदमी अब चिराग लेकर खोजन से भी नहीं मिलेगा।

अध्यक्षीय उद्‌गार व्यक्त करते हुए संपूर्ण क्रांति के वरिष्ठ समाजकर्मी व गांधी शांति प्रतिष्ठान केन्द्र, भागलपुर के अध्यक्ष रामशरण ने शुभकरण चुड़ीवाला को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि उनकी स्मृति संजोने की जरूरत है, ताकि नई पीढ़ी उनको स्वाधीनता आंदोलन में भागलपुर के योगदान के साथ मानवीय प्रयासों के लिए याद रख सके।

सूचना जनसंपर्क के संयुक्त निदेशक कमलाकांत उपाध्याय ने चम्पारण सत्याग्रह पर बिहार सरकार द्वारा आयोजित किये जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों की जानकारी देते हुए कहा कि नई पीढ़ी नैतिकवान बने और न्याय के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा चम्पारण सत्याग्रह से ले। जिला सूचना जनसंपर्क पदाधिकारी विंदुसार मंडल ने शुभकरण जी के मानवीय मूल्यों की चर्चा की। अशोक जीबराजका ने स्वयं को उनके मानवीय प्रयासों का साक्षी बताया और कहा कि उनके कारण ही नगर में कई कल्याणकारी संस्थाएं आरम्भ हुईं, जो लोगों के काम आ रही हैं। अनाथालय के अध्यक्ष संजय कुमार झा ने विश्वास दिलाया कि संसार का भला गांधी के दिखाये अहिंसक रास्तों पर चलकर ही होगा, जिसपर चुड़ीवाला ताउम्र चलते रहे।

समारोह का मुख्य आकर्षण प्रख्यात लोकगायिका चंदन तिवारी का गायन रहा। चंदन ने गीतों के जरिये चम्पारण सत्याग्रह के नायक महात्मा गांधी को याद किया।

आगत अतिथियों का सम्मान अंग मदद फाउंडेशन की सचिव वंदना झा तथा संचालन वरिष्ठ पत्रकार प्रसून लतांत और कुमार कृष्णन ने किया।

–प्रसून लतांत

बड़ी विषम परिस्थितियों से गुजर रहा है देश!

'भारत छोड़ो दिवस' पर गांधी शांति प्रतिष्ठान केन्द्र, कानपुर में परिचर्चा का आयोजन

गांधी शांति प्रतिष्ठान केन्द्र, कानपुर के सिविल लाइंस स्थित परिसर में 'भारत छोड़ो आंदोलन दिवस' के मौके पर *'स्वतंत्रता आंदोलन की हमारी विरासत'* विषय पर परिचर्चा का आयोजन किया गया। परिचर्चा में वक्ताओं की आम राय रही कि इतिहास से यह सीखना और समझना बहुत जरूरी है कि हमें आजादी दिलाने के लिए स्वतंत्रता सेनानियों ने कितने बड़े बलिदान किये।

मुख्य वक्ता जाने-माने लेखक गिरिराज किशोर ने याद दिलाया कि आजादी के आंदोलन में गांधीजी के नेतृत्व में आर्थिक न्याय के साथ-साथ सामाजिक न्याय भी सुनिश्चित करने का संकल्प लिया गया था, ताकि सत्ता में सामाजिक तौर पर पिछड़े लोगों और अस्पृश्यों की भागीदारी सुनिश्चित की जा सके। उस माहौल में तब की युवा पीढ़ी लाठी-गोली, जेल और फांसी की परवाह किये बिना साम्राज्यवादी शोषकों-लुटेरों को भारत से भगाने के लिए आतुर थी। उसके उलटे आज के माहौल में सबसे चिन्ताजनक बात यह है कि निहित स्वार्थों के चलते राजनैतिक-आर्थिक भ्रष्टाचार का बोलबाला है। तकरीबन हर स्तर पर नेताओं, अफसरों, पूंजीपतियों और दलालों की मिलीभगत से और साथ ही विदेशी कंपनियों से गठजोड़ कर देश की दौलत की सुनियोजित लूट जारी है। वह गिने-चुने घरानों में सिमटती जा रही है।

परिचर्चा में यह बात उभकर आयी कि आज के दौर में हमें गरीबों के शोषण के खिलाफ तथा साम्प्रदायिकता की चुनौती से भी जूझना होगा। आज हमें 'भारत जोड़ो' का एलान करना चाहिए। तय हुआ कि गांधीवादी कार्यकर्ता विभिन्न मोहल्लों-बस्तियों में जाकर यह अभियान चलायेंगे। छोटे भाई नरौना, सुरेश गुप्ता, विजय चावला, रामशंकर भाई, कृष्णकांत अवस्थी, खान अहमद फारूक, अशोक गौड़, रजनीकांत मिश्रा, डॉ. नोमानी, ईमैनुअल आदि ने भी परिचर्चा में भाग लिया।

केन्द्र के सचिव बिन्दा भाई ने सभी आगन्तुकों के प्रति आभार जताया। संचालन वरिष्ठ गांधीवादी जगदम्बा भाई ने किया।

–बिन्दा भाई

कविताएं

तड़ित कुमार की छः कविताएं

1. बोलना

बोलो
मुझसे बोलो
कुछ बोला
कुछ भी बोलो
न बोलना हो
तो यही बोलो
कि मुझसे नहीं बोलना

2. झूठ के लिए

सच तो
सच होता ही है
झूठ भी
सच होता है
क्योंकि
झूठ होता है
यह भी एक सच है।
सचाई के साथ
इस्तेमाल किया जाय
तो झूठ भी
कम महान नहीं होता।
कभी-कभी
सच को
सही साबित करने के लिए भी
झूठ की जरूरत पड़ती है।
लेकिन अक्सर लोग
सच को नहीं
झूठ को
सही साबित करने के लिए
झूठ बोलते हैं।

3. उदासीन

हम
कब
किसके
मुंह का निवाला
छीन रहे होते हैं
हमें पता भी नहीं चलता।

4. हर रोज

एक सपनों भरी शाम
एक मृत्यु भरी रात
जीवन का सूत्रपात
सूरज निकलते ही
हर रोज।
फिर वही झमेले
वही मारकाट
एसी की ठंड में बैठकर
मालिक का अमला
लगाता है
हमारे
पसीने की कीमत–
हर तरफ शोर
बहुत हो गया
अब जी मत, अब जी मत–
ताजा खून, ताजा पसीने की
है जरूरत–
फिर भी
शाम ढलते ही
सपनों की सुगबुगाहट
रात भर मौत से टकराहट
और सूरज निकलते ही
जीवन का सूत्रपात
हर रोज।

5. गड्ढा

मैंने
उससे कहा
इस तरह ताबड़तोड़
मत दौड़ो।
सामने गड्ढा है
गिर जाओगे।
दौड़ते हुए
उसने
मेरी ओर
मुड़कर देखा
मुझे मां-बहन की गालियां दीं
और गड्ढे में गिर गया।

6. कौन बोलेगा

झूम के
भीड़ लगाती हैं
कविताएं
दिमाग में जब
बिजली गुल होती है।
अंधेरे में कविता,
कहानी, नाटक, उपन्यास
सब एकाकार।
घुप अंधेरे में
एक हाथ में
कविता हो
और दूसरे में एके-47
तो क्या पता
कौन पहले बोलेगा? ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा प्रिन्टेक, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया, वाराणसी से मुद्रित। प्रधान संपादक : बिमल कुमार / संपादक : अशोक मोती।